दादावाड़ी-दिग्दर्शन



सम्पादक
पं० मदनलाल जोशी
शास्त्री, साहित्यरत्न



प्रस्तावना
पद्मश्री आचार्य मुनि श्री जिनविजयजी



प्रकाशक
प्रतापमल सेठिया
प्र० मन्त्री श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ,
बम्बई २

प्रकाशक :
प्रतापमल सेठिया
प्रधान मन्त्री
श्रीजिनदत्तसूरि सेवा संघ
बम्बई : मद्रास

मुद्रक :
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस
ब्रह्मपुरी, अजमेर

प्रथमावृत्ति :
१५०१
वि० सं० २०१६

मूल्य :
दो रुपया

परम विदुषी पूजनीया व्याख्यान भारती
मालपुरा तीर्थोद्धारिका
साध्वीजी श्री विचक्षणश्रीजी महाराज
के
पावन कर कमलों में
सादर

समर्पण

जिनके
मन्दसौर 'चातुर्मास' के समय
जंगम युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी
की
स्वर्गारोहण तिथि आषाढ़ शुक्ला एकादशी
को
इस पुस्तक का कार्य सम्पन्न हुआ

—प्रतापमल सेठिया

दो शब्द

मानव जीवन के अभ्युत्थान में गुरु का विशिष्ट स्थान है। प्रत्येक धर्म ने गुरु को बहुत ही महत्त्व दिया है और वैसे भी जीवन-व्यवहार में हम सभी अनुभव करते हैं कि बिना गुरु के ज्ञान व सिद्धि नहीं मिलती। जिन विषयों में हमारी बुद्धि काम नहीं देती एवं कर्तव्य पथ का सही निर्णय करने में कठिनता होती है, अनुभवी गुरु मिल जाने पर हमें सच्चा व सीधा रास्ता प्राप्त होजाता है।

जैनधर्म में भी गुरुपद का बड़ा महत्त्व है। पंच परमेष्ठियों में तीन (आचार्य, उपाध्याय और साधु) परमेष्ठी तो स्पष्टतः गुरुपद के धारक हैं। वैसे अरिहन्त भी ज्ञानदाता और मार्ग-प्रदर्शक होने से गुरु ही हैं। इसीलिये कविवर श्री बनारसीदास ने अपने "पंच पद विधान" में पंच परमेष्ठियों में से सिद्ध को देव एवं शेष चार को गुरु बतलाया है—

एई पंच इष्ट आधार, इनमें देव एक गुरु चार।
सिद्ध देव परसिद्ध उदार, गुरु अरहन्तादिक अनगार॥

६ आवश्यकों में गुरुवन्दन को भी एक आवश्यक (कार्य) बतलाया गया है और प्रत्येक धर्मकार्य को गुरु-आज्ञा के अनुसार एवं उनकी साक्षी में सफल करने का विधान है। मुनि के लिये तो श्वासोच्छ्वास के अतिरिक्त प्रत्येक क्रिया गुरु की आज्ञा से ही करने का आदेश है।

गुरु की अविद्यमानता में भी स्थापनाचार्य के सन्मुख विधि-विधान किये जाते हैं। तीर्थंकरों की मूर्ति के सदृश गुरुओं की मूर्ति की पूजा भी भक्ति से की जाती है। वस्तुतः जिन महापुरुषों की कृपा से धर्म का बोध मिलता है और आत्मोत्थान का पथ प्रशस्त होता है उन गुरुओं के प्रति श्रद्धा या भक्ति का होना स्वाभाविक ही है।

खरतरगच्छ में वैसे कई आचार्य महान् प्रभावशाली होगये हैं, जिन्होंने अपने समय में जैनशासन की महान् सेवा की और हजारों लाखों व्यक्तियों को सद्धर्म के पथ पर लगाया। पर, उनमें से चार आचार्यों को ही दादागुरु के नाम से विशेष प्रसिद्धि मिली है। वे हैं १—युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि २—मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि, ३—प्रगट प्रभावी श्री जिनकुशलसूरि और ४—सम्राट् अकबर-प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि। इनमें से श्री जिनदत्तसूरिजी बड़े दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं। वास्तव में वे अपने समय के महान् आचार्य थे। उन्होंने चैत्यवास-रूपी शिथिलाचार का प्रबल विरोध करके विधि मार्ग प्रचारित किया और लाखों व्यक्तियों को जैनधर्म का बोध देकर ओसवाल वंश के अनेक गोत्रों की स्थापना की। इस तरह धर्मप्रचारक और अनेक ग्रन्थों एवं स्तोत्रों के रचयिता के रूप में उनकी सेवा महान् है।

आपके शिष्य मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी भी असाधारण प्रतिभासम्पन्न थे। केवल २६ वर्ष की छोटी-सी आयु में ही ये स्वर्गवासी होगये। शिलालेखों में इन्हें 'महत्तियाण' जाति का स्थापक बतलाया है। श्री जिनकुशलसूरिजी अपने चमत्कारों से भक्तजनों के पूज्य हैं ही, पर श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने भी सम्राट् अकबर को प्रभावित करने के साथ साथ उसके पुत्र जहाँगीर ने,

जो साधुओं के निष्कासन की आज्ञा चालू की थी, उसे निरस्त (रद्द) करवाकर जैनशासन का महान् उपकार किया था।

चारों दादा गुरुओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध श्री जिनदत्तसूरिजी एवं जिनकुशलसूरिजी की सहस्रों मूर्तियाँ और चरणपादुकाएं भारत के कोने कोने में पूजी जाती हैं।

खरतरगच्छ की युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार श्री जिनदत्तसूरिजी के स्तूप की प्रतिष्ठा अजमेर में मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने संवत् १२२१ में की थी और संवत् १२३५ में उनके शिष्य श्री जिनपतिसूरिजी ने बड़े विस्तार के साथ उस स्तूप की पुनः प्रतिष्ठा की। दादावाड़ी या गुरुमन्दिरों की स्थापना का यह श्री गणेश था।

यथा:–(१) "सं० १२२१ सागरपाटे सा० गयधरकारिता श्री पार्श्वनाथ विधिचैत्ये देवकुलिका प्रतिष्ठिता। अजयमेरौ श्री जिनदत्तसूरि-स्तूपः प्रतिष्ठितः।"

(२) "सं० १२३५ अजयमेरौ चातुर्मासी कृता। श्री जिनदत्त-सूरिस्तूपः पुनरपि महाविस्तरेण प्रतिष्ठितः।"

अजमेर के इस स्तूप में श्री जिनदत्तसूरिजी की चरणपादुका स्थापित की गई थी या मूर्ति, इसका स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलता, पर पालनपुर में श्री जिनपतिसूरिजी के स्तूप में उनकी प्रतिमा स्थापित की थी इसका स्पष्ट उल्लेख उपर्युक्त गुर्वावली में मिलता है। यथा–

"वैशाख सुदि १४ श्री प्रह्लादनपुरे सकलनगरे (?) स्तूपे जिनपति-सूरि प्रतिमा स्थापिता, विस्तरेण श्री जिनहितोपाध्यायद्वारेण।"

इसलिये सम्भव है अजमेर के स्तूप में भी जिनदत्तसूरिजी की मूर्ति ही स्थापित की गई हो।

सं० १३११ में वैशाख वदी ६ को प्रह्लादनपुर में जो प्रतिष्ठा-महोत्सव हुआ था, उसके प्रसंग में हरियाल के लघुभ्राता श्रेष्ठी कुमारपाल की बनवाई हुई श्री जिनदत्तसूरिप्रतिमा का उल्लेख गुर्वावली में इस प्रकार मिलता है:-

"जिनदत्तसूरिप्रतिमा हरिपाल लघुभ्राता श्रे० कुमारपालेन।"

संवत् १३१७ में भीमपल्ली में होने वाली प्रतिष्ठा के प्रसंग में भी इन्हीं कुमारपाल-कारित सरस्वती प्रतिमा की प्रतिष्ठा के साथ जिनदत्तसूरिमूर्ति का भी उल्लेख किया गया है।

यथा:-'श्रेष्ठि हरिपालकुमारपालाभ्याम् जिनदत्तसूरिमूर्ति- चन्द्र-प्रभस्वामिप्रतिमे।"

इसके पश्चात् संवत् १३३४ में जिनप्रबोधसूरि-प्रतिष्ठित जिनदत्तसूरिजी की दो मूर्तियों का उल्लेख भी गुर्वावली में किया गया है, जिनमें से एक भीमपल्ली और दूसरी वरड़िया स्थान में प्रतिष्ठित हुई थी।

यथा:-श्री भीमपल्ल्यां वैशाख वदि ५ श्री नेमिनाथ श्री पार्श्वनाथ बिम्बयो: श्री जिनदत्तसूरिमूर्त्तेः। × × वरड़िया स्थाने, वैशाख वदि ६, श्री पुण्डरीक,-श्री गौतम स्वामी-प्रद्युम्नमुनि-जिनवल्लभसूरि-जिनदत्तसूरि-जिनेश्वरसूरिमूर्त्तीनां सरस्वत्याश्च सविस्तरजलयात्रापूर्वं विस्तरेण निर्विघ्नं प्रतिष्ठामहोत्सवः।"

संवत् १३३४ से पहले की प्रतिष्ठित जिनदत्तसूरिजी की उपर्युक्त मूर्तियों का तो अब पता नहीं चलता पर, सं० १३३४ में जिनप्रबोधसूरि प्रतिष्ठित एक भव्यमूर्ति का ब्लॉक "अपभ्रंश-काव्यत्रयी" के प्रारम्भ में मुद्रित हुआ है। इसके पश्चात् सं० १३८१ में श्री जिनकुशलसूरिजी ने उच्चपुर के लिये जिनदत्तसूरि-मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी

यथा:-"श्री उच्चापुरीयोग्य श्री जिनदत्तसूरि"

उपर्युक्त गुर्वावली में संवत् १३९३ तक का ही वर्णन है, परन्तु इसके बाद भी अनेकों गुरुमूर्तियां प्रतिष्ठित की जाती रही हैं। गुर्वावली में गुरुचरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इसलिये मालूम होता है कि मुसलमानी साम्राज्य में जब मूर्तियों का तोड़ना जोरों से प्रारम्भ हुआ तो गुरुचरण-पादुकाओं का निर्माण एवं प्रतिष्ठा को अधिक उचित समझा गया।

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी की किसी भी प्रतिमा की प्रतिष्ठा का कोई उल्लेख गुर्वावली में नहीं है न कोई प्राचीन प्रतिमा ही इनकी मिलती है।

श्री जिनकुशलसूरिजी के स्वर्गवास-स्थल देरावर में उनके अग्निसंस्कार के स्थान पर स्तूप बनाने का उल्लेख गुर्वावली में है। सं० १३९० में इनकी तीन मूर्तियां इनके पट्टधर श्री जिनपद्म-सूरिजी ने प्रतिष्ठित की थी, जिनमें से एक उक्त स्तूप के लिये, दूसरी जैसलमेर और तीसरी क्यासपुर के लिये।

श्री जिनकुशलसूरिजी अपने प्रगट प्रभाव एवं चमत्कारों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। इसलिये सबसे अधिक मूर्तियां, चरण-पादुकाएं व गुरुमन्दिर इन्हींके पाये जाते हैं। इनकी प्रतिष्ठित उपलब्ध मूर्तियों में सं० १४८६ वाली मूर्ति ही सबसे अधिक प्राचीन है। यह पहले मालपुरा में थी और अभी मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी के स्थान (महरोली) में जहां शत्रुंजय तीर्थ की अवतारणा की गई है, वहां स्थापित है। इस मूर्ति का चित्र व लेख हमारे "दादा श्री जिनकुशलसूरिग्रन्थ" में प्रकाशित है।

अकबरप्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी के स्वर्गवास-स्थल

बिलाड़ा में एक सुन्दर स्तूप है, उसमें इनकी चरणपादुकाएं स्थापित की गई थीं।

यद्यपि अब तक ये चार आचार्य ही दादागुरु के नाम से अधिकतर पूजे जाते हैं, पर मेरी राय में खरतर लघु आचार्य-शाखा के जिनप्रभसूरि जैसे महान् विद्वान् और प्रभावक आचार्य को भी इन्हीं चारों की भांति मान्य करना चाहिये। उनका संक्षिप्त जीवन चरित्र 'विधि प्रपा' के प्रारम्भ मे हमने प्रकाशित किया है। उनका विस्तृत चरित्र भी प्रसिद्ध चारों दादा गुरुओं के चरित्र की भाँति स्वतन्त्ररूप से शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा।

इन दादागुरुओं की संस्कृत और हिन्दी में कई पूजाएं समय समय पर बनी हैं, उनमें से एक श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की अष्टप्रकारी पूजा हमारे प्रकाशित 'स्नात्रपूजादि संग्रह' में छपी है। मस्तयोगी ज्ञानसाररचित जिनकुशलसूरि लघु अष्टप्रकारी पूजा भी हमने 'ज्ञानसार-ग्रन्थावली' में छपवाई थी, पर संयोगवश उसके फर्मे देश के बंटवारे के समय कलकत्ते के जिल्दसाज के यहाँ ही रह गये।

चारों दादागुरुओं के स्वतन्त्र जीवन-चरित्र हमने तैयार करके प्रकाशित किये थे उनके आधार पर उपाध्याय लब्धिमुनिजी ने संस्कृत में चार चरित्र काव्य बनाये हैं और हमारे तीन ग्रन्थों का गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है तथा चौथे का शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। दादा श्री जिनकुशलसूरि ग्रन्थ की द्वितीयावृत्ति भी प्रकाशित होने वाली है।

युगप्रधान जिनदत्तसूरिजी का स्वर्गवास सं० १२११ में अजमेर में हुआ था। अतः अजमेर के श्री रामलालजी लूणिया के मन में संवत् २००९ में यह विचार आया कि सूरिजी के स्वर्गवास को संवत् २०११ में ८०० वर्ष पूरे होंगे इस उपलक्ष्य में जिनदत्तसूरि-

अष्टम-शताब्दी महोत्सव उनके स्वर्गस्थान (दादावाड़ी) में मनाया जाय। संयोगवश संवत् २०१३ में यह उत्सव वहां मनाया गया। उस समय मैंने यह प्रस्ताव रखा कि यह उत्सव केवल तीन दिनों का जलसा ही न रहे पर उसके निमित्त से कुछ स्थायी और ठोस काम भी किया जाय। विचार विमर्श के बाद "श्री जिनदत्त-सूरि सेवा संघ" की स्थापना हुई और उसके उद्देश्य श्वेताम्बर जैन-शास्त्रोल्लिखित ७ क्षेत्रों की सर्वांगीण उन्नति रखा गया। प्रथम अध्यक्ष श्रीमहताबचन्द गोलेछा और मन्त्री श्रीप्रतापमलजी सेठिया एवं श्री रूपचन्दजी सुराणा चुने गये। संस्था का द्वितीय अधिवेशन पालीताणा में हुआ इसके वर्तमान अध्यक्ष मद्रास वाले श्री पूनमचन्द भाई तथा मन्त्री श्री सेठियाजी एवं संयुक्तमन्त्री श्रीधनसुखजी गोलेछा हैं। श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ द्वारा यथाशक्य जैन संघ की सेवा करने का प्रयत्न किया गया है। अनेक छात्रों को शिक्षण-सहायता (छात्रवृत्ति) दी गई व कई उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया गया है।

श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ का यह आवश्यक कर्तव्य होता है कि भारत भर में बिखरे हुए गुरुमन्दिर और मूर्तियों आदि की रक्षा और सुव्यवस्था करे। इसके लिये यह आवश्यक था कि कहाँ कहाँ गुरुमन्दिर, मूर्तियाँ व चरण हैं और वर्तमान में उनकी क्या अवस्था है, इत्यादि बातों का पूरा विवरण संगृहीत करे। इस कार्य के लिये अनेक व्यक्तियों से पत्रव्यवहार किया गया और अनेक साधनों से जो भी जानकारी अबतक एकत्रित की जा सकी उसे व्यवस्थित करके, कई वर्षों के श्रम से तय्यार कर प्रस्तुत 'दादावाड़ी दिग्दर्शन' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। साथ ही यह भी प्रयत्न किया गया है कि यह ग्रन्थ अधिक से अधिक

उपयोगी हो। इसमें ३२० स्थानों के गुरुस्मारकों का विवरण व अकारानुक्रम से प्रान्त एवं प्रान्तवर्त्ती स्थानों का विवरण दिया गया है तथा अन्त में स्थानों की सूची, कतिपय स्तवन, और आरम्भ में चारों दादागुरुओं के संक्षिप्त चरित्र देकर ग्रन्थ को महत्त्वपूर्ण बना दिया है। प्रारम्भ से ही इस ग्रन्थ की तैयारी और प्रकाशन में मेरी पूर्ण अभिरुचि रही है, इसीलिये इसे इस रूप में प्रकाशित होते देखकर मुझे हर्ष होना स्वाभाविक ही है। यद्यपि इस ग्रन्थ में मुद्रणदोषादि की कुछ कमियां रह गई हैं, फिर भी यह एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करता है, इसलिये गुरुभक्तों द्वारा अधिकाधिक अपनाया जाना चाहिये, जिससे दूसरे संस्करण को बहुत कुछ परिवर्धित और संशोधित करके प्रकाशित किया जा सके।

गुरुदेव का शुभाशीर्वाद हमें सदा प्राप्त हो इसी भावना के साथ मैं अपने वक्तव्य को यहीं समाप्त करता हूं।*

— **अगरचन्द नाहटा**
बीकानेर

---

* **श्री अगरचन्दजी नाहटा अपने साहित्य सर्जन के माध्यम से जैनसमाज की जितनी सेवा कर रहे हैं, वह अविस्मरणीय है। आपने अपनी साहित्यिक प्रतिभा द्वारा न केवल जैन साहित्य में ही, अपितु हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी जो गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त किया है, जैनसमाज को इस पर गर्व है।**

प्रस्तुत 'दादावाड़ी दिग्दर्शन' पुस्तक के प्रकाशन आदि में आपका प्रारम्भ से ही पूर्ण सहयोग रहा है। आपने उक्त पुस्तक के सम्बन्ध में अपने उपयोगी सुझाव एवं जो विचार व्यक्त किये हैं, उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

आपके दिये हुए सुझावों के अनुरूप पुस्तक का संशोधित एवं परिवर्धित आगामी संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित हो, ऐसी हम आशा करते हैं।

मन्त्री—श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ

विषयानुक्रम

प्रकाशकीय

संसार को सन्मार्ग पर लाने तथा समाज को धार्मिक भावना के आधार पर समुन्नत बनाने का बहुत बड़ा श्रेय जैनधर्म के आचार्यों एवं क्रियानिष्ठ साधु-मुनिराजों को है। ऐसे आचार्यों तथा साधु-मुनिराजों में खरतरगच्छ के आचार्यों का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय इसलिये है कि इस गच्छ के आचार्यों ने प्रारम्भ से ही जैनदर्शन के पवित्र सिद्धान्तों का समाज में व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। ऐसे महान् आचार्यों का पुण्यस्मरण करना हमारा प्रथम एवं परम कर्त्तव्य है।

खरतरगच्छ, श्वेताम्बर जैन समाज का प्राचीन गच्छ है। आचार्य श्री जिनेश्वरसूरिजी एवं श्री बुद्धिसागरसूरिजी को अपनी क्रियानिष्ठा तथा आचारपालन की कठोर तत्परता के आधार पर चैत्यवासियों के साथ किये गये शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करने के पश्चात् वि०सं० १०६६ से १०७८ के मध्य दुर्लभ राजा ने अपनी राज-सभा में अधिक 'खरतर' (सच्चे) देखकर इन्हें 'खरतर' की उपाधि से विभूषित किया। तभी से इस गच्छ का नामकरण 'खरतरगच्छ' हुआ। इस गच्छ में श्री जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य, 'संवेगरंगशाला' जैसे महत्त्वपूर्ण के रचयिता श्री जिनचन्द्रसूरिजी एवं नवांग-वृत्तिकार के रूप में लब्ध प्रतिष्ठ श्री अभयदेवसूरिजी हुए, जिनके द्वारा रचित 'जयति हुण',

स्तोत्र की १७ वीं गाथा के प्रताप से भूगर्भ से स्तम्भन पार्श्वनाथ प्रगट हुए। इनके पट्टधरों के रूप में एक के पश्चात् एक प्रभावशाली आचार्यों की परम्परा में क्रमशः श्री जिनवल्लभसूरिजी, युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी, मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी तथा कतिपय अन्य पट्टधर आचार्यों के पश्चात् १४ वीं शताब्दी में श्री जिनकुशलसूरिजी एवं इनके २०० वर्षों के अनन्तर अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी हुए। इन सब में प्रमुखरूप से श्री जिनदत्तसूरिजी, मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी, श्री जिनकुशलसूरिजी एवं अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी, ये चारों आचार्य दादाजी के नाम से प्रसिद्ध माने जाते हैं। (इन चारों का संक्षिप्त परिचय-इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।)

ऐसे महापुरुषों के प्रति, जिन्होंने जीवन पर्यन्त आत्मोद्धार के साथ ही समाजोद्धार के कई कार्य कर असंख्य-मानवों को सन्मार्ग पर लगाया, प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में श्रद्धा एवं आदरभावना होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि भारतवर्ष के कोने कोने में इन चारों दादा गुरुओं के पुण्यस्मारक विविध रूपों में निर्माण किये गये एवं आज भी किये जा रहे हैं, जिन्हें दादावाड़ी कहा जाता है। इन दादावाड़ियों में कहीं गुरु-प्रतिमाएँ हैं तो कहीं चरण-पादुकाएँ। इस प्रकार श्रद्धा की साकार रूप गुरुजनों की ये दादावाड़ियां हमारे जीवन को निरन्तर सत्य सिद्धान्तों की ओर प्रेरित करती रहती हैं।

दादावाड़ियों के ये पवित्र स्थान हमारे देश में कितने हैं एवं किस रूप में है, इसकी जानकारी होना प्रत्येक गुरुप्रेमी के लिये आवश्यक ही नहीं, अपितु उपादेय भी है। अतः इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये विगत कई वर्षों से 'श्री जिनदत्तसूरि-सेवासंघ' के तत्वावधान में मेरा यह प्रयास रहा कि किसी भी प्रकार से भारतवर्ष की समस्त दादावाड़ियों का परिचयात्मक संकलन कर उसको पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाय।

खरतरगच्छ के महान् आध्यात्मिक सन्त, श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज ने अपने समय में पालीताना में शत्रुञ्जय आदि जैन तीर्थों की सुव्यवस्था के लिए एक संस्था स्थापित की थी, जो आज भी इस दिशा में आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी के नाम से कार्य कर रही है। इस संस्था ने अपने कार्यकलापों में स्वयं की ओर से कुछ समय पूर्व "जैनतीर्थ-सर्व संग्रह" के दो भाग बृहत्पुस्तकाकार में प्रकाशित किये है, जिनमें विविध जैन-मन्दिरों, उपाश्रयों, धर्मशालाओं आदि का विवरण देते हुए भी खेद है कि गुरुमन्दिरों, गुरुप्रतिमाओं तथा गुरुचरणों को विशेष मान्यता न देते हुए उनका विवरण नहीं-सा दिया गया, जबकि मैंने इसके सम्बन्ध में श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ के प्रधानमन्त्री के नाते आग्रह पूर्वक निवेदन के रूप में उक्त संस्था से पत्र व्यवहार भी किया था। मेरे पत्रों के उत्तर उक्त संस्था की ओर से जिस ढंग से प्राप्त हुए हैं, उनका यहां स्पष्टतया पूर्ण उल्लेख करना उचित न समझ इतना ही निवेदन करना पर्याप्त होगा कि पत्रोत्तर के रूप में प्रकट किये गये उस संस्था

के वे विचार गुरुजनों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति के प्रतीक नहीं थे; अस्तु। इसीलिये हमें इस पुस्तक के प्रकाशन की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

जैन समाज ही नहीं जैनेतर प्रत्येक समाज में गुरु का कम महत्त्व नहीं हैं। इस पर भी 'खरतरगच्छ' के आचार्यों—गुरुजनों ने तो लाखों मनुष्यों को जैनधर्म में दीक्षित कर सत्य-सिद्धान्तों से परिपूर्ण ऐसा सन्मार्ग-प्रदर्शित किया कि जिस पर चलकर ८०० वर्षों के पश्चात् भी हम और हमारे अन्य-वन्धु अपना कल्याण कर रहे हैं। ऐसे गुरुजनों के पुण्यस्मारकों का-दादावाड़ियों का दिग्दर्शन कराना श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ ने अपना प्रथम कर्तव्य समझ कर प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित करने का निश्चय किया।

यद्यपि सम्पूर्ण भारत में स्थित दादावाड़ियों की सही सही जानकारी प्राप्त करना साधारण कार्य नहीं है, इसलिये कि इसके लिये पर्याप्त समय एवं पर्याप्त साधन होना अनिवार्य है। पुनरपि केवल मात्र पत्रों के द्वारा स्थान स्थान के प्रमुख व्यक्तियों से जितनी भी जिस रूप में जानकारी प्राप्त हो सकी उसका संकलन कर 'दादावाड़ी-दिग्दर्शन के रूप में इस पुस्तक को प्रकाशित करते हुए आज हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

मैं सर्व प्रथम उन महानुभावों का हृदय से आभार मानना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने मेरे पत्रों को मान्यता

देते हुए अपने अपने स्थानों की दादावाड़ियों की जानकारी प्रदान की। वस्तुतः यदि इन महानुभावों के द्वारा उक्त जानकारी प्राप्त नहीं होती तो यह असम्भव ही था कि बिना अन्य अर्थसाध्य-साधनों का उपयोग किये इस पुस्तक का प्रकाशन होता! साथ ही जैन समाज के गौरव एवं अधिकृत विद्वान् साहित्यभूषण श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा श्री भंवरलालजी नाहटा का तो मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तक प्रकाशन में समुचित परामर्श तथा मार्गप्रदर्शन कर हमें अपना सहयोग प्रदान किया।

जैनसाहित्य के अनन्य आराधक एवं प्रकाण्ड विद्वान् पद्मश्री आचार्य मुनि श्री जिनविजयजी का मैं किन शब्दों में आभार प्रदर्शन करूं यह समझ नहीं पा रहा हूँ। वास्तव में आपने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर जो अनुग्रह किया उसके लिए मैं हृदय से वन्दनपूर्वक आपका अभिनन्दन करता हूँ।

इसी प्रकार मध्यप्रदेश के सफल साहित्यकार एवं कवि श्री पं. मदनलाल जोशी शास्त्री, साहित्यरत्न को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने सम्पादक के रूप में विशेष रुचि के साथ इस पुस्तक की संकलित सामग्री का सुव्यवस्थित सम्पादन-कार्य सम्पन्न किया।

अन्त में उन समस्त सहयोगी महानुभावों को, जिन्होंने अग्रिम ग्राहक बनकर पुस्तक-प्रकाशन की ओर मुझे प्रोत्साहित

किया, इस पुनीत कार्य में सहयोग प्रदान करने के फलस्वरूप सेवा संघ की ओर से धन्यवाद देते हुए निवेदन है कि दादावाड़ी-दिग्दर्शन की यह पुस्तक आपके हाथों में है। इसमें त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक इसलिये है कि सारा संकलन पत्रों के द्वारा ही हुआ है अतः आपकी दृष्टि में कोई भूल रह गई हो तो कृपया सूचित करने का कष्ट करें, जिससे आगामी संस्करण में उसका संशोधित स्वरूप प्रकाशित किया जासके।

आशा है आप त्रुटियों के लिये क्षमा करेंगे तथा सही जानकारी प्रदान करते हुए अनुगृहीत करेंगे।

भवदीय—

आषाढ़ शु० ११
शुक्रवार
संवत् २०१६

प्रतापमल सेठिया
प्रकाशक
प्र. मंत्री-श्री जिनदत्तसूरिसेवासंघ

सम्पादकीय

विश्व के अन्यान्य राष्ट्रों की अपेक्षा भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है, जिसके आध्यात्मिक पुण्य-प्रकाश में सम्पूर्ण संसार को वास्तविक मार्गदर्शन प्राप्त होता है। भौतिकवाद से सदा सर्वदा दूर रहने वाला यह भारत अपनी आध्यात्मिक साधना के द्वारा जहाँ सम्पूर्ण विश्व का सफल नेतृत्व करता है, वहाँ अपने अलौकिक एवं क्रियाशील आचरणों के द्वारा प्रभावोत्पादक स्वरूप प्रगट करने की भी पूर्ण क्षमता रखता है। यही कारण है कि 'रत्नगर्भा वसुन्धरा' के वैशिष्ट्य को सार्थक रूप में सिद्ध करने वाला भारत, भगवती वसुन्धरा के शिरोभाग को अपनी प्रभावोत्पादिनी चमत्कारमयी प्रतिभा के द्वारा चमत्कृत एवं सुशोभित करने वाला वह मुकुटमणि है, जिसका अन्तर्दर्शनात्मक दिव्य, भव्य एवं ओजस्वी आध्यात्मिक आलोक किसी चतुष्पथ (चौराहे) के शाश्वत प्रकाश स्तम्भ के समान इतस्ततः परिभ्रमण करते हुए समस्त संसार को अन्धकार से प्रकाश की ओर लाता है, जिससे विश्व का प्रत्येक प्राणी जीवन की सही दिशा में प्रवृत्त हो, पारमार्थिक दृष्टि से आत्म कल्याण कर सके।

वस्तुतः यह भारत की ही अपनी एक लोकोत्तर विशेषता है, जो आदिकाल से "मित्ती मे सव्वभूएसु" तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" का परम सुखदायी सत्य सन्देश प्रदान करती रहती

है। जिसने भी एक बार इसके इस सत्य सन्देश को अपने जीवन में आत्मसात् किया, निस्सन्देह वह सारहीन नश्वर संसार में रहते हुए भी सारमयी सत्यता के समीप पहुंचे बिना नहीं रह सका। इस सम्बन्ध के कई प्रामाणिक उदाहरण पुरातन ऐतिहासिक-ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन करने पर हमें सहज ही उपलब्ध हो सकते हैं।

आधुनिक काल के इस भौतिकवादी युग में भी भारत की इस लोकोत्तर विशेषता को अक्षुण्ण बनाये रखने का अधिकांश श्रेय उन तपःपूत महान् तपस्वियों, साधनानिष्ठ साधकों, मनीषी महात्माओं, परोपकारपरायण महापुरुषों, धर्माचार्यों एवं समाज के आचरणशील उन्नायकों को है, जिन्होंने यत्र तत्र सर्वत्र विचरण करते हुए अपने प्रभावशील सदुपदेशों, क्रियाशील आचरणों एवं संयमशील आदर्श नियमों के परिपालन द्वारा जनमानस में आध्यात्मिकता का प्रेरणाप्रदायी सजीव संचार एवं प्रचार-प्रसार किया तथा जो आज भी करते हैं।

अपने अध्यात्मवादी पवित्र एवं आदर्श संस्कारों के आधार पर समय समय पर यद्यपि भारत में एक नहीं अनेकों ऐसे महापुरुष एवं आचार्यगण उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने आध्यात्मिक-साधनों के मङ्गलमय माध्यम से लोक मङ्गल के उदात्त उद्देश्य की पूर्ति में पर्याप्त रूपेण सफलता प्राप्त की; तथापि जैनदर्शन के समुदार एवं समन्वयवादी स्वस्थ दृष्टिकोण को अपना लक्ष्य-बिन्दु बनाकर व्यष्टि में समष्टि का दर्शन करने वाले कतिपय

महापुरुष आचार्यों के रूप में ऐसे भी होगये हैं, जिनका पुण्य पवित्र-स्मरण आज भी हमारे लिये आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करने की पूर्ण क्षमता रखता है। खरतरगच्छीय युगप्रधान आचार्यप्रवर श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज, ऐसे ही महापुरुषों एवं आचार्यों की गौरवशाली परम्परा में हुए हैं, जिन्होंने बारहवीं शताब्दी में जन्म लेकर अपने आध्यात्मिक तत्त्वचिन्तन, पारमार्थिक प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं तपोमयी उग्र साधना के द्वारा जैनदर्शन का समन्वयवादी व्यापक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए भारत की इस पुण्य भूमि को गौरवान्वित किया।

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी तथा उनके पट्टधर मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी एवं इसी परम्परा के अन्य आचार्य श्री जिनकुशलसूरिजी तथा अकबरप्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी खरतरगच्छीय जैन समाज में उच्च कोटि के महान् आचार्य होगये हैं, जो दादाजी के नाम से प्रसिद्ध माने जाते हैं।

इन चारों ही आचार्यों में आचार्यप्रवर श्री सोमप्रभसूरि द्वारा व्यक्त किये गये गुरुलक्षण स्पष्टतया प्रतिभासित होते हैं। श्री सोमप्रभाचार्य ने अपने प्रसिद्ध काव्य "सिन्दूर प्रकर" में गुरु के सम्बन्ध में एक स्थान पर बतलाया है कि—

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्यजनं च निस्स्पृहः।
स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः, स्वयं तरंस्तारयितुं च यः क्षमः॥

—"जो अनिन्दनीय मार्ग पर चलकर निस्स्पृह होकर दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलने के लिये प्रवृत्त करे, तथा जो

स्वयं संसार सागर से तिरकर अन्यजनों को भी पार कराने की क्षमता रखे, वही सच्चा गुरु एवं आचार्य होता है तथा अपना हित चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे ही गुरु की सेवा करनी चाहिये।"

इस रूप में चारों दादा गुरु सही अर्थों में गुरु थे, जिन्होंने जीवन पर्यन्त निस्स्पृह होकर स्वयं के साथ ही दूसरों को भी सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। ऐसे महान् तत्त्वदर्शी एवं कल्याणकारी गुरुजनों के प्रति श्रद्धा तथा पूज्य भाव प्रगट करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है।

महापुरुषों की पुण्य स्मृति या तो इतिहासों के अध्ययन करने पर जागृत होती है अथवा तत्कालीन स्तूपों, स्मारकों या शिलालेखों आदि से यह ज्ञात होता है कि यह महापुरुष कितना महान् था ? वस्तुतः अतीतकाल का हमारा यह स्वर्णिम वैभव, जो कहीं छत्रियों, स्मारकों, समाधिमन्दिरों, गुरुमन्दिरों, शिलालेखों एवं ताम्रपट्टों आदि में बिखरा पड़ा है, हमारे गुरुजनों की महत्ता पर प्रकाश डालने में पर्याप्त रूपेण सहायक सिद्ध होसकता है। अतएव यह आवश्यक है कि इन सबका व्यवस्थित संकलन कर समाज के सन्मुख कोई ऐसा स्वरूप प्रस्तुत किया जाय, जिससे उक्त वैभव का समुचित दिग्दर्शन हो सके।

प्रसन्नता है कि अखिल भारतीय श्री जिनदत्तसूरि सेवा-संघ के प्रधानमन्त्री श्रेष्ठिवर्य्य श्री प्रतापमलजी सेठिया ने

प्रस्तुत पुस्तक "दादावाड़ी-दिग्दर्शन के प्रकाशन द्वारा इस ओर ध्यान देकर उक्त ध्येय की जो पूर्ति की है, निस्सन्देह वह समाज के लिये अधिक उपयोगी एवं लाभप्रद सिद्ध होगी।

श्रीयुत सेठियाजी को धर्मनिष्ठ, क्रियाशील एवं उत्साहपूर्ण कर्तव्यपरायण व्यक्ति के रूप में प्रायः सभी जानते ही हैं। आप जिस कार्य को अपने हाथो में लेते है, उसकी पूर्ण सम्पन्नता पर ही अपनी सफलता मानते हैं। इस अवस्था में भी इतना उत्साह इतनी कर्मठता प्रायः कम देखने में आती है। वास्तव में 'दादावाड़ी दिग्दर्शन, का प्रकाशन आपही की अध्यवसाय वृत्ति एवं उत्साहमयी प्रेरणा का सुपरिणाम है, अन्यथा एक ही स्थान पर बैठकर सैंकड़ों व्यक्तियों से केवल पत्रव्यवहार कर सम्पूर्ण भारत के विविध स्थानों की जानकारी प्राप्त कर लेना सहज सम्भव नहीं था।

प्रस्तुत पुस्तक दादावाड़ीदिग्दर्शन में अकारानुक्रमणिका से क्रमशः भारत के समस्त प्रान्तों तथा प्रान्तीय नगरों एवं ग्रामों का यथोपलब्ध विवरण देते हुए दादावाड़ियों के साथ ही उनमें विराजमान अथवा प्रतिष्ठित गुरुप्रतिमाओं, गुरुचरणों तथा इसी प्रकार के अन्य खरतरगच्छ के आचार्यों से सम्बन्धित विषयों का दिग्दर्शन कराने का यथाशक्य प्रयास किया गया है, जिससे प्रत्येक पाठक यह जान सके कि कहाँ कहाँ दादावाड़ियाँ तथा किस किस स्थान पर गुरु चरण आदि हैं? इसके अतिरिक्त जिस जिस स्थान के लेख उपलब्ध हुए हैं,

उन्हें भी उसी रूप में यथास्थान दे दिये हैं। इन लेखों में कई लेख अत्यन्त प्राचीन हैं, जिनकी भाषा यद्यपि व्याकरण के नियमों के अनुसार नहीं है, तथापि उनके मौलिक रूप की सुरक्षा की दृष्टि से बिना किसी संशोधन के उनका उसी रूप में उपयोग किया है, जो ऐतिहासिक अनुसन्धान की दृष्टि से उचित भी है। इस पुस्तक में दिये गये स्थानों के अतिरिक्त पाकिस्तान में भी ढाका, मुलतान, लाहौर तथा हाला आदि स्थानों में गुरुचरण थे, जिनका उल्लेख इस पुस्तक में पूरी जानकारी के अभाव में नहीं किया गया है।

अधिकांशत: जिन चारों दादागुरुओं की प्रतिमाओं एवं चरणादि का उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है, उनका संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रारम्भ में दे दिया गया है। इसी प्रकार विषयानुक्रमणिका के अतिरिक्त अन्त में गुरुजनों के कतिपय प्राचीन स्तवन तथा परिशिष्ट भाग के अन्तर्गत संकेत सूची के रूप में यह भी बतलाने का प्रयास किया है कि किस नगर में कितनी प्रतिमाएँ एवं चरण हैं। इसके अतिरिक्त पीछे से कुछ स्थानों के प्राप्त विवरण तथा उनका संशोधित स्वरूप भी परिशिष्ट में दे दिया गया है। इस प्रकार इस पुस्तक का सम्पादन करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि यह पुस्तक साहित्यिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से सुसंस्कृत, लाभप्रद एवं प्रेरणाप्रदायिनी हो ; अस्तु।

इस अवसर पर मैं श्रद्धेय श्रेष्ठिवर्य्य श्री प्रतापमलजी सेठिया का हृदय से आभार प्रदर्शन करना अपना कर्तव्य समझता

हूँ; जिनके अथक परिश्रम एवं निष्ठा के फलस्वरूप यह पुस्तक प्रकाशन के पथ पर अग्रसर होसकी एवं जिन्होंने मुझे इसके सम्पादन कार्य में पथदर्शक के समान प्रत्येक प्रकार का सर्वविध सहयोग प्रदान किया । इसी प्रकार मैं सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र, सर्व श्री सेठियाजी के चिरञ्जीव एवं मेरे अभिन्न मित्र बन्धुवर श्री धनरूपमलजी सेठिया के प्रति भी कृतज्ञता प्रगट किये बिना नहीं रह सकता, जिनके द्वारा मुझे समय समय पर इस पुनीत कार्य के हेतु समुचित सुझाव एवं हार्दिक सहयोग प्राप्त होता रहा । यद्यपि आत्मीय होने के कारण इनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना आत्मीय सहयोग के महत्त्व को न्यून करना है ।

इसके अतिरिक्त जैनदर्शन, इतिहास एव पुरातत्त्व के अद्वितीय विद्वान् पद्मश्री आचार्य श्री मुनि जिनविजयजी ने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर जो कृपा की इसके लिये मैं हृदय से उनके प्रति आभारी हूँ ।

अन्त में मैं भी अपनी ओर से उन समस्त महानुभावों को साधुवाद अर्पित करता हूं जिन्होंने अपने अपने स्थानों की दादा-वाड़ियों का विवरण प्रेषित कर सामग्री के संकलन में साहाय्य प्रदान किया ।

यद्यपि सम्पादन, एवं प्रूफसंशोधन करते समय पूरी साव-धानी रखी है तथापि त्रुटियां रहना स्वाभाविक है । अतः

सहृदय पाठक महानुभाव क्षमा करते हुए यदि इस पुस्तक का सारग्रहण कर लाभान्वित हुए तो मैं इसके सम्पादन की सफलता समझूंगा।

दशपुर (मन्दसौर)
आषाढ़ कृ० एकादशी
वि० सं० २०११

मदनलाल जोशी
शास्त्री, साहित्यरत्न
सम्पादक

प्रस्तावना

श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ के मन्त्री तथा मन्दसौर निवासी जैनसमाज के एक सेवा भावी प्रमुख कार्यकर्ता धर्मप्रिय सेठिया श्री प्रतापमलजी द्वारा श्री जिनदत्तसूरिसेवासंघ की ओर से प्रकाशित की जानेवाली 'दादावाड़ी-दिग्दर्शन' नामक इस छोटी सी पुस्तिका के पढ़ने से पाठकों को यह ज्ञात होगा कि खरतर-गच्छ के मुख्य युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरि तथा उनके उत्तराधिकारी आचार्य वर्य मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि, श्री जिनकुशलसूरि एवं अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि आदि के स्मारक रूप में, भारत भर में कहाँ कहाँ गुरु–पूजास्थान बने हुए हैं ? यह एक विशेष ज्ञातव्य वस्तु है कि खरतरगच्छ के इन पूर्वाचार्यों के स्मारक स्वरूप ये 'दादावाड़ी' नाम से जितने गुरु पूजास्थान बने हुए हैं उतने अन्य किसी गच्छ के पूर्वाचार्यों के स्मारक रूप में ऐसे खास स्मारक स्थान बने ज्ञात नहीं होते।

इन पूर्वाचार्यों में मुख्य स्थान श्री जिनदत्तसूरि का है। श्री जिनदत्तसूरि का स्वर्गगमन राजस्थान के प्राचीन एवं प्रधान नगर अजमेर में, वि० सं० १२११ में हुआ। जहाँ पर उनके शरीर का अग्निसंस्कार हुआ वहाँ पर, भक्त जनों ने सर्वप्रथम उस स्थान पर स्मारक स्वरूप देवकुल बनाया और उसमें स्वर्गीय आचार्य वर्य के चरणचिह्न स्थापित

श्री जिनदत्तसूरि एक महान् प्रभावशाली आचार्य थे। ज्ञान और क्रिया के साथ ही उनमें अद्भुत संगठनशक्ति और निर्माणशक्ति थी। उन्होंने अपने प्रखर पांडित्य एवं ओजःपूर्ण संयम के प्रभाव से हजारों की संख्या में नये जैनधर्मानुयायी श्रावक कुलों का विशाल संघ निर्माण किया। राजस्थान में आज जो लाखों ओसवाल जातीय जैन जन हैं उनके पूर्वजों का अधिकांश भाग, इन्हीं श्रीजिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिबोधित और सुसंगठित हुआ था। बाद में उत्तरोत्तर, इन आचार्य के जो शिष्य–प्रशिष्य होते गये वे भी महान् गुरु का आदर्श सन्मुख रखते हुए इस संघ निर्माण का कार्य सुन्दर रूप से चलाते तथा बढ़ाते रहे। श्री जिनदत्तसूरि के ये सब शिष्य-प्रशिष्य धर्म प्रचार और संघ निर्माण के उद्देश्य से, भारतवर्ष के जिन-जिन स्थानों में पहुंचे, वहां पर देव स्थानों के साथ साथ ही वे युगप्रवर्तक प्रवर गुरुके स्मारक रूप में छोटे-मोटे गुरु-पूजास्थान भी बनाते रहे, और उनमें सूरिजी के चरण चिह्न अथवा मूर्ति रूप स्थापित करते रहे। ये स्थान आज सब 'दादावाड़ी' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं।

खरतरगच्छ से सम्बन्ध रखने वाली गुरु परम्पराओं की पट्टावलियों में भी उनके उल्लेख मिलते हैं कि किन आचार्यों अथवा उनके आज्ञानुवर्त्ती यतिजनों ने कहां और कब दादा-वाड़ी नाम से प्रसिद्ध होने वाले स्तूपों, देवकुलों आदि की स्थापना करवाई ?

श्री जिनदत्तसूरि, महान्, विद्वान् और चरित्रशील होने के उपरान्त एक विशिष्ट चमत्कारी महात्मा भी माने जाते हैं। अतः उनके नामस्मरण तथा चरणपूजन द्वारा भक्तों की मनोकामनाएं भी सफल होती रही हैं—ऐसी श्रद्धा पूर्वकाल से इनके अनुयायी भक्तजनों में प्रचलित रही है अतः इस कारण से भी इनकी पूजा निमित्त इन देवकुलों, छत्रियों, स्तूपों आदि का निर्माण होता रहा है।

श्री जिनदत्तसूरिजी के बाद उनकी पट्ट परम्परा में होने वाले मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी श्री जिनकुशलसूरिजी तथा अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी के विषय में भी चमत्कारी होने की बड़ी श्रद्धा भक्तजनों में प्रचलित है। इसलिये प्रायः इन चारों आचार्यों की भी सम्मिलित चरण-पादुकाएं आदि प्रतिष्ठित और पूजित होती रही हैं। अनेक स्थानों में चरण चिह्नों के सिवा मूर्तिरूप भी प्रतिष्ठित मिलते हैं।

दादा शब्द एक प्रकार से देशी भाषा का रूढ़ शब्द है। संस्कृत या प्राकृत में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। योंतो इसका सामान्य अर्थ वृद्ध या पूज्य पुरुष होता है। राजस्थान में खासकर दादा पिता के पिता इस अर्थ में व्यवहृत होता है। दादा पड़दादा अर्थात् पिता-प्रपिता यह इसका सार्वत्रिक अर्थबोध है। मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र में भी प्रायः इसी अर्थ में इसका विशेष प्रयोग होता है। पर कहीं

कहीं बड़े भाई को भी लोग 'दादा' कहकर पुकारते हैं। बंगाल में मुख्य करके इसी अर्थ में इसका प्रयोग होता है। महाराष्ट्र में भी प्राय: इसी अर्थ का बोधक है।

सम्भव है राजस्थान की देशप्रसिद्धि के अनुरूप श्री जिनदत्तसूरिजी के शिष्य-प्रशिष्यों ने महान् गुरुको 'दादा' के पूज्य एवं आत्मीय भाव की एकता बोधक शब्द से सम्बोधित करना शुरुकिया हो, और फिर उसी शब्द का सार्वत्रिक प्रचार होता रहा हो।

धर्म एवं समाज हितैषी श्री प्रतापमलजी सेठिया ने यह एक सुन्दर प्रयास किया है कि 'दादावाड़ी' नाम से भारत के किस किस स्थान में गुरु स्मारक स्वरूप पूजनीय स्थान बने हुए हैं। यद्यपि इस छोटी सी पुस्तिका में देशव्यापी सब ही दादावाड़ियों का सम्पूर्ण हाल नहीं संकलित हो सका है, तथापि इससे आगे कार्य करने वालों को एक मार्गदर्शिका के रूप में इसका अच्छा उपयोग होसकेगा। इस छोटीसी पुस्तिका में जो कुछ शिलालेख आदि दिये गये हैं उनसे यह ऐतिहासिक तथ्य ज्ञात होगा कि वि० सं० १२११ से लेकर वि० सं० २०१० तकके ८०० वर्ष जितने दीर्घकाल में, कितने स्थानों में कितने जनों ने, कितने और कैसे गुरुस्मारक स्वरूप ये पूजनीय स्थान बनाये हैं? इन शिलालेखों में सैंकड़ों ही यतिजनों और श्रावक श्रविकाओं के तथा उनके कुलों के नाम अंकित हैं।

यहां पर प्रसंगवश हम यह भी एक निर्देश करना चाहते हैं कि जिन महान् दादागुरु श्री जिनदत्तसूरि के स्मारक-स्वरूप दादावाड़ी नामक स्थानों का इस पुस्तिका में दिग्दर्शन कराया गया है उन्हीं श्री जिनदत्तसूरिजी का एक भव्य स्मारक-स्थान, राजस्थान के राष्ट्रतीर्थ चित्तौड़गढ़ में वनवाने का प्रयत्न किया जारहा है। चित्तौड़गढ़ वास्तव में श्री जिनदत्त-सूरि का प्रभव स्थान है। चित्तौड़ ही में इनको सूरिपद प्राप्त हुआ और चित्तौड़ ही से इनके प्रभावपूर्ण जीवनक्रम का शुभारम्भ हुआ।

इसलिये चित्तौड़ यह श्री जिनदत्तसूरि के भक्तजनों के लिए कल्याणक भूमि जैसा सर्वश्रेष्ठतीर्थ स्थान है। इसी तीर्थ में श्रीहरिभद्रसूरि स्मारक के अन्तर्गत श्री जिनदत्तसूरि का एक भव्य देवकुल वनाने की योजना हो रही है और उसमें श्री जिनदत्तसूरि एवं उनके परम गुरु अभयदेवसूरि एवं श्री जिनवल्लभसूरि आदि की उपासना योग्य सुन्दर मूर्तियां प्रतिष्ठित करने का शुभ मनोरथ है। आशा है प्रस्तुत पुस्तिका के पाठ से प्रेरणा प्राप्त कर विशिष्ट गुरुभक्त श्रावक-बन्धु इस नूतन एवं अनुपम दादादेवकुलक कार्य में अपने द्रव्य का सदुपयोग कर चिर पुण्य प्राप्त करने का लाभ लेंगे।

साथ में हमें सूचित करते हुए हर्ष होता है कि प्रस्तुत पुस्तिका के प्रकाशनकार्य में अपूर्व श्रम एवं सहयोग देने वाले

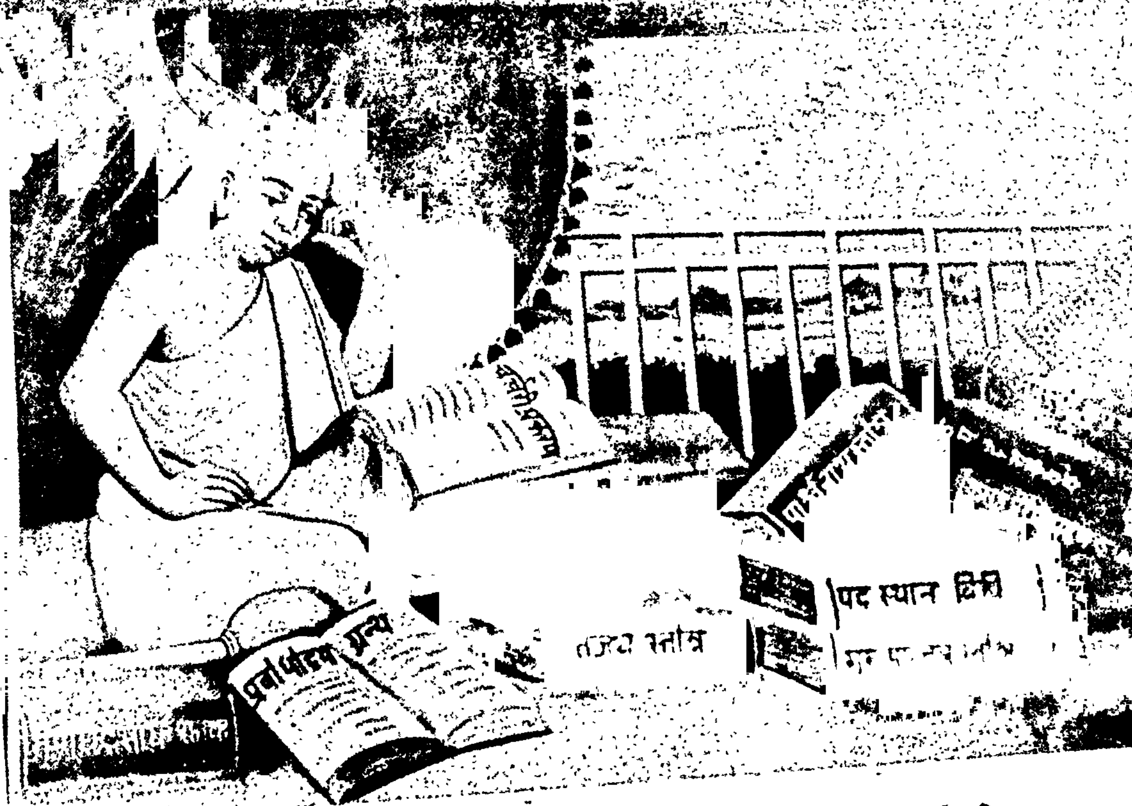
श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ के मन्त्री श्री प्रतापमलजी सेठिया तथा इनकी धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती वल्लभकुमारीजी भी इस चित्तौड़ के स्मारक-निर्माण कार्य में यथा योग्य पूरा उत्साह प्रदर्शित कर रहे हैं।

चित्तौड़गढ़
वैशाखी पूर्णिमा
संवत् २०१६

मुनि जिनविजय

श्री जिनदत्त सूरिजी के दादा गुरु नव अंगी टीकाकार





कई ग्र[illegible] का टीका करते हुए युग प्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी

दादा गुरुचरित्र

युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी

दासानुदासा इव सर्वदेवा, यदीयपादाब्जतले लुठन्ति ।
मरुस्थली कल्पतरुः स जीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ।।

युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी अपनी तेजोमयी प्रतिभा, उत्कृष्टसाधना एवं लोकोत्तर प्रभाव के कारण जैन-जगत् में वड़े दादाजी के नाम से सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हुए हैं ।

इनका जन्म गुजरात प्रान्त के धवलक (धोलका) नगर में हुंवड़ज्ञातीय श्री वाछिगजी के यहाँ वि० सं० ११३२ में हुआ था । इनकी माता का नाम वाहड़देवी था । वाहड़देवी का यह नवजात शिशु (चरित्रनायक) प्रारम्भ से ही अपनी विलक्षणता के फलस्वरूप जनमन के आकर्षण का केन्द्र वनगया था । जव इस वालक ने शिशु-अवस्था पारकर किशोरवय में प्रवेश किया, तव एक दिन वहीं चातुर्मास में विराजमान विदुषी आर्याओं के प्रवचनामृत का पान करने के हेतु धर्मपरायणा अपनी माँ के साथ वह भी गया । वाहड़देवी आर्याओं के उपदेश से विशेष प्रभावित हुई एवं धार्मिकचर्या के रूप में वह अपने इस पुत्ररत्न को साथ लेकर प्रतिदिन प्रवचन सुनने जाने लगी ।

एक समय प्रवचन समाप्त करने के पश्चात् आर्याजी ने वाहड़देवी के इस शान्त, कान्त एवं प्रतिभाशाली वालक को गम्भीरतापूर्वक देखा तो वे उसके अलौकिक लक्षणों को देखकर आश्चर्य में पड़गई एवं मन ही मन विचार करने लगीं कि "यह

बालक महान् भाग्यशाली, परमप्रतापी एवं धार्मिक आचार्य के रूप में समाज का कल्याण करनेवाला होगा। निस्सन्देह इसका जन्म सफल है।" आर्याजी की श्रद्धा उस बालक के प्रति दिन प्रतिदिन बढ़ती गई और वे अधिक निष्ठा के साथ उन दोनों को उपदेश देने लगी जिसके फलस्वरूप बालक का निर्मल हृदय उस वैराग्यमयी वाणी से भर गया।

विदुषी आर्याजी श्री जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य श्री धर्मदेवजी उपाध्याय की आज्ञानुवर्तिनी शिष्या थीं। उन्होंने बाहड़देवी की स्वीकृति लेकर उपाध्यायजी के समीप इस बालक के प्रभावोत्पादक गुणों का संवाद भेजा। श्री धर्मदेवजी भी उस संवाद को प्राप्त कर तत्काल ही वहां पधारे और जब उस बालक को देखा तो वे भी विस्मित हुए बिना नहीं रहे। उन्होंने सुकुमारवय वाले प्रभावशाली इस बालक को दीक्षित करने के सम्बन्ध में इसकी मां से पूछा "क्या तुम अपना यह बालक समाज को दे सकती हो? हम इसको दीक्षित करेंगे और यह सम्पूर्ण संसार का कल्याण करते हुए अपने जीवन को सफल बनावेगा।"

वाहड़देवी भाग्यशाली पुत्र की भाग्यशालिनी माँ थी। उसने तत्काल ही इसके लिये स्वीकृति प्रदान कर दी। उस समय बालक की अवस्था ९ वर्ष की थी। श्री उपाध्यायजी ने उसीसमय (संवत् ११४१ में) शुभ मुहूर्त्त देखकर बालक को दीक्षित करलिया एवं उसका नाम मुनिसोमचन्द्र रखा।

इस प्रकार उस समय की विदुषी साध्वियों की कुशाग्र मेधा से परीक्षित यह बालक, जो दीक्षित होकर आज सोमचन्द्र मुनि बना, आगे चलकर यही युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। निस्सन्देह यह उन आर्याजी की विचक्षण प्रतिभा

का ही सुफल है कि उन्होंने वाहड़देवी के उस बालक में अलौकिक गुणों के दर्शन किये।

वैसे सोमचन्द्रमुनि ने श्रावकोचित सूत्रादि तो पूर्व में ही पढ़लिये थे, किन्तु अब उपाध्यायजी के निर्देशानुसार श्री सर्वदेव गणि के तत्त्वावधान में साधुप्रतिक्रमण आदि पढ़ना प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् लक्षणपञ्जकादि विविध शास्त्रों के अध्ययनार्थ आप ७ वर्ष तक पाटन रहे। इस अवधि में आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं अलौकिक पाण्डित्य के कारण आशातीत ख्याति तथा सम्मान प्राप्त किया।

आपकी बड़ी दीक्षा आचार्य श्री अशोकचन्द्रजी के कर कमलों से हुई। श्री हरिसिंह भद्राचार्यजी एवं श्री देवभद्राचार्यजी जैसे आचार्य आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध रहते थे। अल्पवय में ही आपने सिद्धान्तादि विशिष्ट ज्ञान एवं पाण्डित्य इस प्रकार प्राप्त कर लिया था कि आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो स्तम्भन पार्श्वनाथ तीर्थ के प्रगटकर्ता नवअङ्गी टीकाकार खरतरगच्छाचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी के शिष्य श्री जिनवल्लभसूरिजी ने अपने स्वर्गवास के पूर्व श्री देवभद्रसूरिजी को यह संकेत कर दिया था कि "मेरे पश्चात् मेरे स्थान पर सोमचन्द्र को आचार्य पद देना।" फलस्वरूप तदनुसार आप ही के द्वारा निर्धारित एवं निर्दिष्ट शुभमुहूर्त में संवत् ११६९ वैशाख कृष्णा ६ शनिवार के दिन सन्ध्या के समय चित्तौड़ में भव्य समारोह के साथ आपको आचार्य पद से विभूषित कर श्री जिनदत्तसूरि के नाम से प्रसिद्ध किया गया। सूरिपद ग्रहण करने के पश्चात् आपने कई ग्रामों तथा नगरों में विहार कर धर्म प्रचार किया। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर कई स्थानों पर जिनमन्दिरों का निर्माण कार्य भी हुआ। इसी प्रसंग में एक समय अजमेर के प्रमुखश्रावकों

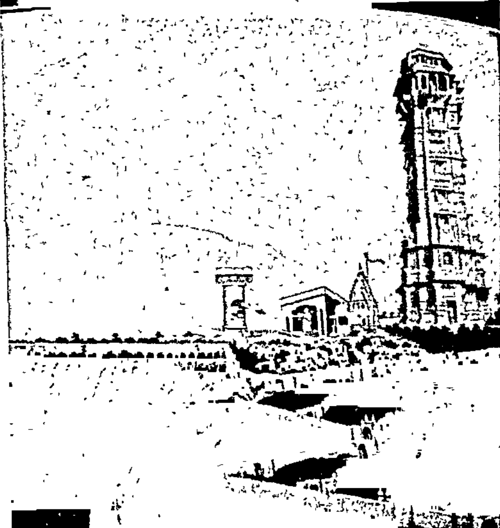
द्वारा निवेदन करने पर अजमेर के संस्थापक महाराजा जयदेव के सुपुत्र श्री अर्णोराज ने भी आपके दर्शनों से प्रभावित होकर धर्म स्थान एवं निवास स्थान बनवाने के लिये जैन समाज को भूमि दी।

आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी धर्मोपदेश के अतिरिक्त साधना में भी निरंतर लीन रहते थे। साधना की इन घड़ियों में आपने कई ऐसे चमत्कार पूर्ण कार्य किये जिनके द्वारा सभी विस्मित हो जाते थे।

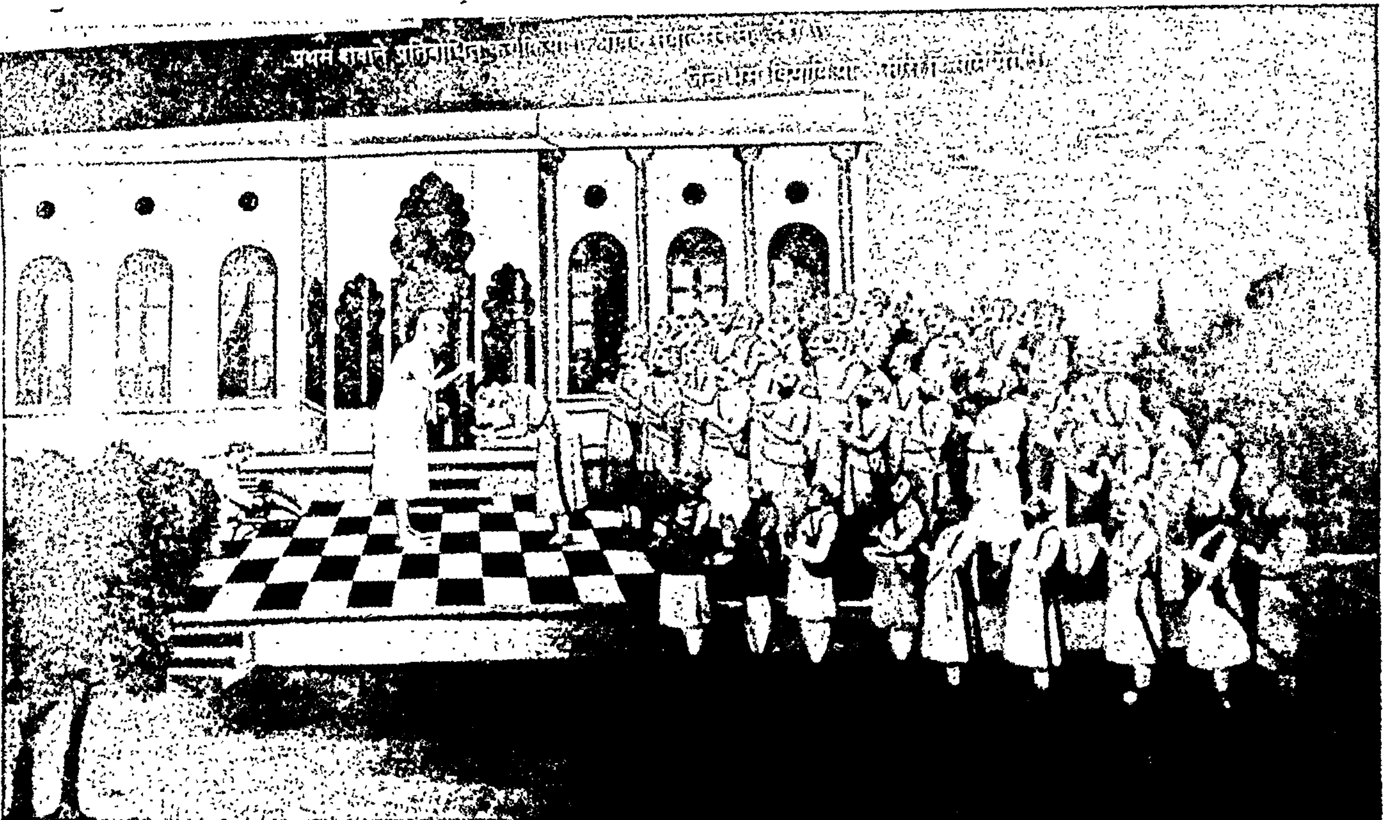
पूर्वकाल में महान् प्रभावी श्री वज्रस्वामी ने अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त प्राचीन ग्रन्थ का निर्माण कर सुयोग्य एवं सत्पात्र शिष्य के अभाव के कारण उस ग्रन्थ को चित्तौड़गढ़ में निर्मित वज्रस्तम्भ में सुरक्षित रूप से रख दिया था। पूर्व परम्परानुसार कई साधनाशील आचार्यों एवं विद्वानों ने उसकी प्राप्ति के लिये प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहे। इसके पश्चात् श्री जिनदत्तसूरिजी ने अपने योग बल से वज्रस्तम्भ में सुरक्षित उस ग्रन्थरत्न को प्राप्त कर लिया, जिसके फलस्वरूप आपको जिनशासन के अष्ट प्रभाविकों में से सप्तम प्रभाविक सिद्धि की प्राप्ति हुई। जब आप इसकी साधना करते हुए पंजाब प्रान्त की पंच नदी के मध्य आसन लगाकर ध्यान मग्न थे उस समय पाँचों नदियों के अधिष्ठायक पीर आपको विचलित करने की दृष्टि से उपद्रव करने लगे किन्तु आपकी अडिग साधना से वे स्वयं ही आज्ञाकारी सेवक के रूप में आपके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये। इसी प्रकार बावन वीरों को भी आपने वशमें कर अद्भुत सफलता प्राप्त की।

एक समय विक्रमपुर में भूतप्रेतादि तथा महामारी आदि के रोग से जनता अत्यन्त दुःखी थी। चारों ओर हाहाकार मच

प्रथम दादाने चित्तोड नयरे, वज्र स्थम्बे मंदिरों ।।
मंत्र पोथी ग्रही निज शक्ते, जीते बावन वीरों ।।

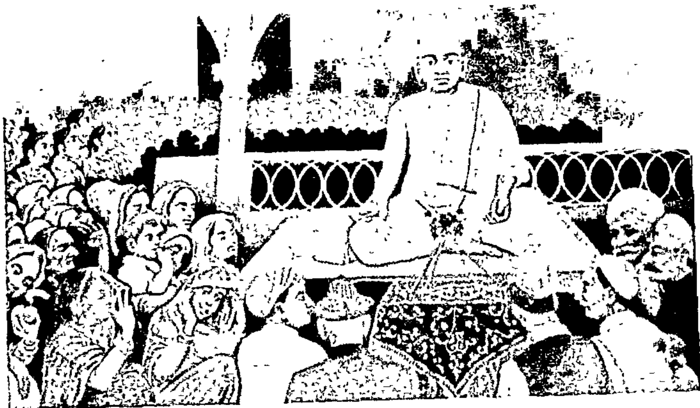


चित्तौड़ के वज्रस्तम्भ में सुरक्षित ग्रन्थरत्न को गुरुदेव ने प्राप्त करलिया



लाखों नरनारियों को जैन धर्म में दीक्षित करते हुए दादा गुरु श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज

जोगनीयां चौसट उज्जैनि म्यानवाने । प्रथम दादा गुरु छलनेकु ... ॥
मिली गई तब शीष नमाये । वर ... सप्तक ... बताने ॥



दादागुरु श्री जिनदत्तसूरिजी म० ने, श्राविकाओं का रूप बनाकर छलने के लिये आई हुई ६४ योगनियों को व्याख्यान के पश्चात् स्तम्भित कर दिया ।



युगप्रधान पद के समाधान के लिये नागदेव ने गिरनार शिखर पर तपस्या की ।

रहा था। वहाँ की जनता के लिये इस उपद्रव की रक्षा का कोई भी साधन दृगत नहीं हो रहा था। ऐसे समय में आपने वहाँ पधार कर अपने तपोवल से उपद्रव को शान्त करते हुए वहाँ की जनता को दुःख से उन्मुक्त किया। फलस्वरूप कई जैनेतर आपके शिष्य होगये एवं ५०० शिष्य तथा ७०० शिष्याओं ने प्रव्रज्या ग्रहण करली। इस प्रकार आपके श्रावकों की संख्या बढ़ते बढ़ते एक लाख तीस हजार होगई-एवं आपने उनके लिये ५७ गोत्रों की स्थापना की।

एक समय श्री सूरिजी महाराज ने उज्जयिनी में साढ़े तीन करोड मायाबीज (ह्रींकार) का जप करना प्रारम्भ किया तो उनको अपनी इस क्रिया से विचलित करने एवं छलने के लिये ६४ योगिनियाँ आपके व्याख्यान में आईं। आपने ज्ञानवल से यह बात पहिले ही जानलीथी। अतः व्याख्यान में श्रावकों के द्वारा उनके बैठने की व्यवस्था पृथक् ही यह कहकर करवादी कि "आज व्याख्यान में कुछ विशिष्ट श्राविकाएँ आवेगीं, अतः उनके बैठने की व्यवस्था पृथक् करदेना।" तदनुसार व्याख्यान के समय ६४ योगिनियां छद्मवेश में श्राविकाओं का रूप बनाकर आईं एवं निर्दिष्ट स्थान पर जाकर बैठ गईं। सूरिजी ने अपने योगवल से इनको वहीं स्तम्भित करदिया। फलस्वरूप व्याख्यान की समाप्ति के पश्चात् सभी श्रोतागण वन्दना कर चलेगये, किन्तु ये नवीन श्राविकाएँ यत्नपूर्वक चेष्टा करने पर भी न जासकीं एवं सब कुछ समझ लेने के पश्चात् लज्जित होकर आचार्यश्री से क्षमायाचना पूर्वक कहने लगीं कि "हमतो आपको छलने आईं थीं, परन्तु आपके तपोवल से हम स्वयं ही छली गईं।" इस प्रकार वे क्षमायाचना कर भविष्य में धर्म प्रचार के प्रत्येक कार्य में साहाय्य का वचन दे, अपने स्थान पर लौट गईं।

सूरिजी के समय में प्रत्येक गच्छ वाले अपने अपने गच्छनायक आचार्यों को युगप्रधान कहते थे। ऐसी स्थिति में यह निर्णय नहीं हो पाता था कि वास्तव में युगप्रधान कौन है? इसका समुचित समाधान करने के हेतु परमार्हत् सुश्रावक नागदेव ने उज्जयन्त (गिरनार) शिखर पर तपश्चर्या प्रारम्भ करते हुए तीन दिन तक उपवास किये। उसकी इस तपस्या से प्रसन्न हो अम्बिका देवी ने प्रगट होकर उसके हाथ में प्रशस्ति रूप युग प्रधान का नाम लिख दिया और कहा कि—"जो इन अक्षरों को पढ़ लेगा उसी को तू 'युगप्रधान' जानना।"

नागदेव अम्बिकादेवी द्वारा लिखे गये उन अक्षरों को पढ़ाने के लिये देश देशान्तरों का भ्रमण करते हुए कई आचार्यों के समीप गया, किन्तु कहीं सफलता नहीं मिली। अन्त में वह पाटण गया, जहां श्रीजिनदत्तसूरिजी विराजते थे। नागदेव ने अपना वह हाथ आचार्यश्री के सम्मुख रखते हुए निवेदन किया कि—'आचार्यदेव! कृपया यह बताने का अनुग्रह करें कि इसमें क्या लिखा है?" आचार्यश्री ने उस पर अपनी ही प्रशंसा देखकर स्वयं न पढ़ते हुए वासक्षेप डाल दिया, जिससे अक्षर स्पष्ट रूप से प्रगट हो गये एवं अपने शिष्य की ओर संकेत करते हुए कहा कि—वह पढ़ देगा। इसके पश्चात् उनके शिष्य ने सबके सामने उत्सुकता के साथ नागदेव के हाथ पर लिखी हुई उस गुरुस्तुति को पढ़कर इस प्रकार सुनाया:—

"दासानुदासा इव सर्वदेवा, यदीय पादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थली कल्पतरुः स जीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः॥

—जिनके चरणकमलों में समस्त देव दासानुदास के समान लोटते हैं एवं जो मरुस्थल में कल्पवृक्ष के समान सबकी मनो-

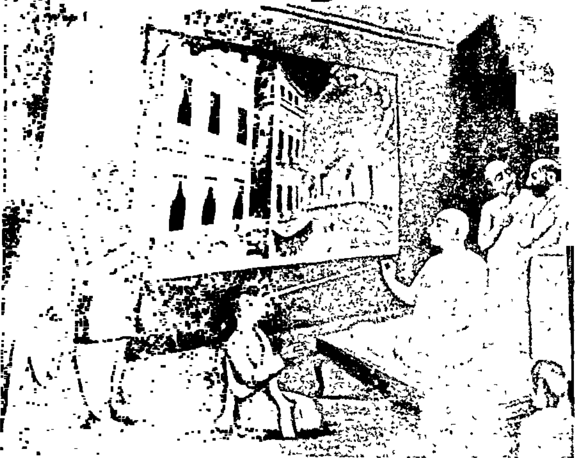


अम्बिका देवी द्वारा नागदेव के हाथ पर लिखे गये अक्षरों पर दादाजी ने वासक्षेप डालकर शिष्य से पढ़वाने का आदेश दिया।

एकओ पवित्र, धाम अजमेर । जगमग जिनजी धाम ॥
पाय लागे पादरि प्रथम दादा गुरूने । धन वेई अभयदायी ॥



बिजली को पात्र के नीचे स्तम्भित करते हुए, दादा श्री जिनदत्तसूरिजी





दादाजी ने भरुचनगर में मृत्यु प्राप्त सुलतान के पुत्र को जीवनदान दिया ।

कामनाएं पूरी करने वाले है, ऐसे वे युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी जयशाली हों।

यह सुनकर नागदेव परम प्रसन्न हुआ एवं अपनी शंका का समुचित समाधान प्राप्त कर आचार्यश्री के चरण-कमलों में वन्दना करते हुए उनका परम भक्त हो गया। इस प्रकार देव-प्रदत्त 'युगप्रधान' पद की इस अलौकिक घटना से 'युगप्रधान' के रूप में आचार्यदेव की सर्वत्र प्रसिद्धि होगई।

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी ने अपने जीवन में कई चमत्कार पूर्ण कार्य किये। एक समय अजमेर नगर में सायङ्काल के समय जब पाक्षिक प्रतिक्रमण हो रहा था, तब अकस्मात् ही विद्युत् (बिजली) का ऐसा भयंकर प्रकोप हुआ कि सभी भयभीत हो, घबराने लगे। यहां तक कि जिनालय एवं उपाश्रय भी विद्युत्-शक्ति से भस्म होने जा रहे थे कि आपने सबकी रक्षा करते हुए अपने पात्र के नीचे बिजली को स्तम्भित कर दिया एवं सबको भय से मुक्त किया।

सूरत में एक समय ऐसी ही विचित्र घटना घटी कि वहां के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठिवर्य्य के पुत्र की नेत्रज्योति किसी कारण से नष्ट हो गई। वह अपने पुत्र की इस पीड़ा से दुःखी हो, मुक्ति पाने के हेतु निरन्तर प्रयास करता रहा, किन्तु कहीं सफलता नहीं मिली। अन्त में आचार्यदेव की अलौकिक प्रतिभा एवं प्रभाव को सुनकर वह उनकी शरण में गया। आपने तत्काल ही श्रेष्ठिपुत्र के नेत्रों में ज्योति का संचार कर दृष्टिदान दिया।

इसी प्रकार भरुच नगर में भी एकबार वहां के सुल्तान के पुत्र को सर्प ने डस लिया था, जिससे वह अचेतन होगया एवं कई

प्रयत्न करने पर भी उसको चेतना नहीं आई और उसकी मृत्यु होगई। मृत्यु के उपरान्त जब कुमार के शव को अग्निसंस्कार के लिये स्मशान ले जा रहे थे, उस समय वहीं सूरत के उसी सेठ के द्वारा आचार्यश्री की चमत्कारपूर्ण महिमा बतलाने पर उस शव को आचार्य देव की शरण में लेगये। आपने अपनी तपोमयी शक्ति से विष का विनाशकर सुलतान के पुत्र में प्राणों का संचार कर दिया।

ऐसी एक नहीं अनेकों घटनाएँ हैं, जिनसे आचार्यदेव की चमत्कारमयी प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी ने अपने विहार के द्वारा जहां धार्मिक सद्भावना के प्रचार के साथ जिनशासन की अभूतपूर्व सेवा की, वहां आपने संसार के कल्याण के लिये प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा में कई ग्रन्थों की रचनाओं के साथ ही गूढ़ विषयों के अर्थ को सरलता पूर्वक स्पष्ट करने की दृष्टि से टीकाएं भी कीं। इसी प्रकार आप जितने प्रभावशील रहे, आपके द्वारा रचित ग्रन्थ एवं विशेषत: स्तुतिपरक रचनाएं भी उतनी ही प्रभावशील मानी जाती हैं। सहस्रों श्रद्धालु आज भी जिनका पाठकर अपनी आपत्तियों से मुक्ति पाते हैं एवं निर्भयता के साथ सुखपूर्वक अपना जीवन यापन करते हैं।

इस प्रकार जीवन पर्यन्त अपने योग बल, तपोबल एवं ज्ञान-बल से जिनशासन की उन्नति करते हुए पूर्व में ही अपना आयु-शेष ज्ञातकर अनशन-आराधना द्वारा आपने अजमेर में संवत् १२११ आषाढ़ शु० ११ के दिन इस नश्वर शरीर का परित्याग किया एवं स्वर्गवासी हुए।

आपके अग्नि संस्कार के स्थान (वीसल समुद्र के तट) पर (अजमेर में) सुन्दर स्तूप बना हुआ है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १२२१ में मणिधारीदादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने की थी। इसके पश्चात् तो भारत के विविध प्रान्तों, नगरों एवं ग्रामों में आपकी प्रतिमाएं तथा चरण स्थापित किये गये एवं आज भी किये जारहे हैं।

श्रद्धालुजन अपूर्वश्रद्धा के साथ आचार्य श्री की संस्थापित इन प्रतिमाओं एवं चरणपादुकाओं की पूजा-आराधना कर अपने आचार्यदेव युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

आपके उस समय के पहनने के वस्त्र, चद्दर तथा चोलपट्टा आज भी जैसलमेर में सुरक्षित हैं एवं अजमेर स्थित मदार पहाड़ की उच्चतम चोटी पर अधिकांश समय तक जप तप ध्यानादि में लीन होने के कारण उस स्थान पर अभी भी उनकी स्मृति के रूप में छत्री, शाल एवं जल की टंकी विद्यमान है।



मणिधारी दादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के पट्टालंकार मणिधारो श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने अपने असाधारण व्यक्तित्व एवं लोकोत्तार प्रभाव के कारण अल्पायु में हो जो प्रसिद्धि प्राप्त की वह सर्व-विदित है। ये महान् प्रतिभाशाली एवं तत्त्ववेत्ता विद्वान् आचार्य थे।

इनका जन्म संवत् ११९७ भाद्रपद शुक्ल ८ के दिन जैसलमेर के निकट, विक्रमपुर नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता साह रासलजी एवं माता देल्हण देवो थी। जन्मसे ही ये अधिक सुन्दर थे, जिसके कारण सहज ही सर्वसाधारण के प्रिय होगये।

संयोगवश विक्रमपुर में युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तासूरिजी का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास को अवधि में सूरिजी के अमृत-मय उपदेशों को सुनने के लिये जहां नगरवासी भारी संख्या में जाते थे, वहां देल्हण देवी भी प्रतिदिन प्रवचनामृत का पान करती हुई अपने जीवन को धन्य मानती थी। देल्हण देवी के साथ उसके पुत्र (हमारे चरित्रनायक) भी रहते थे। एक दिन देल्हणदेवी के इस बालक के अन्तर्हित शुभलक्षणों को देखकर आचार्य देव ने अपने ज्ञान बल से यह जानलिया कि "यह प्रतिभा-सम्पन्न बालक सर्वथा मेरे पट्ट के योग्य है। निस्सन्देह इसका प्रभाव लोकोत्तार होगा एवं निकट भविष्य में ही यह गच्छनायक का महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करेगा।" बालक संस्कारवान् तो था ही,

उसका मन इतनी कम आयु के होते हुए भी विरक्ति की ओर अग्रसर होने लगा। अन्ततः विक्रमपुर से विहार करने के पश्चात् अजमेर में सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ल नवमी के दिन श्री पार्श्व-नाथ विधि चैत्य में प्रतिभासम्पन्न इस बालक को आचार्यजी ने दीक्षित किया। दीक्षा के समय इस बालक की आयु मात्र ६ वर्ष की थी।

दीक्षित होने के पश्चात् दो वर्ष की अवधि में ही किये गये विद्याध्ययन से आपकी प्रतिभा चमक उठी। फलतः आपकी असाधारण मेधा, प्रभावशाली मुद्रा एवं आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर दीक्षित होने के दो वर्ष पश्चात् ही संवत् १२०५ में वैशाख शुक्ल ६ के दिन विक्रमपुर के श्री महावीर जिनालय में युग प्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी ने आपको आचार्य पद प्रदान कर श्री जिनचन्द्रसूरिजी के नाम से प्रसिद्ध किया। आचार्य पद का यह महा महोत्सव इनके पिता साह रासलजी ने ही भव्यसमारोह के साथ किया था।

युगप्रधान गुरुदेव दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी ने अपने विनयी शिष्य श्री जिनचन्द्रसूरि को शास्त्रज्ञान आदि के साथ ही गच्छ-संचालन आदि की भी कई शिक्षाएं दी थीं। आपने इनको विशेष रूप से यह भी कहा था कि "योगिनीपुर-दिल्ली में कभी मत जाना।" क्योंकि आचार्यदेव यह जानते थे कि वहां जाने पर श्री जिनचन्द्रसूरि का मृत्युयोग है।

संवत् १२११ में आषाढ़ शुक्ल ११ को अजमेर में जब श्री जिनदत्तसूरिजी का स्वर्गवास होगया तब अल्पायु में ही सारे गच्छ का भार आपके ऊपर आगया एवं अपने गुरुदेव के समान आप भी कुशलतापूर्वक सफलता के साथ इस गुरुतर भार को वहन करने में लग गये।

गच्छभार को वहन करते हुए आपने विविधग्रामों एवं नगरों में विहार कर धर्मप्रचार करना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप आपके उपदेशों से प्रभावित होकर कई श्रावकों एवं श्राविकाओं ने दीक्षाएँ ग्रहण कीं।

आचार्य देव धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र के भी पारंगत विद्वान् थे। इसके साथ ही आपने कई चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं।

एक बार संघ के साथ विहार कर जब दिल्ली की ओर पधार रहे थे तो मार्ग में वोरसिदान ग्राम के समीप संघ ने अपना पड़ाव डाला। उसी समय संघ को यह मालूम हुआ कि कुछ लुटेरे उपद्रव करते हुए इधर ही आ रहे हैं। इस समाचार से सभी भयभीत हो घबराने लगे। इस प्रकार संघ को भयातुर देख कर सूरिजी ने कारण पूछा कि आप भयभीत क्यों हैं? किस कारण से घबरा रहे हैं? और जब आचार्यदेव को यह ज्ञात हुआ कि ये म्लेच्छोपद्रव से व्याकुल हैं, तो उन्होंने तत्काल ही कहा—"आप सब निश्चिन्त रहो, किसी का कुछ भी अहित होनेवाला नहीं है। प्रभु श्री जिनदत्तसूरिजी सब की रक्षा करेंगे।"

इसके पश्चात् आपने मन्त्रध्यान कर अपने दण्ड से संघ के चारों ओर कोट के आकार की रेखा खींचदी। इसका प्रभाव यह हुआ कि संघ के पास से जाते हुए उन म्लेच्छों (लुटेरों) को संघ ने भली प्रकार देखा, किन्तु उनकी दृष्टि संघ पर तनिक भी न पड़ी। इस प्रकार मार्ग में म्लेच्छोपद्रव के भय से संघ मुक्त होकर आचार्य श्री के साथ विहार करता हुआ क्रमशः दिल्ली के समीप पहुंच गया।



[illegible] [redacted] [illegible] मार्ग में संघके चहुंओर मंत्रित लकिर खिंचवेकर संघकी रक्षा की
जिससे डाकुओं के नजरमें संघ दिख नहि सका और वे चलेगये



स्वर्गवास के पश्चात् गुरुदेव का विमान (रथी) विश्राम स्थान से हाथी द्वारा उठवाते पर भी नहीं हिला।

आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी के दिल्ली पधारने की सूचना पाकर जब सुन्दर वेशभूपा में सुसज्जित होकर नगरवासी एवं सौभाग्य-वती स्त्रियां मंगलगान गाती हुईं आचार्यजी के दर्शनार्थ जाने लगीं तो उन्हें जाते देख कर राजप्रासाद में बैठे हुए महाराजा मदनपाल ने अपने अधिकारियों से पूछा कि नगर के ये विशिष्ट जन कहाँ जारहे हैं? उन्होंने कहा—"राजन्! ये लोग अपने गुरु-देव के स्वागतार्थ जारहे हैं। आज उनका हमारे नगर में पदार्पण हुआ है। गुरुदेव अल्पवय में होते हुए भी धर्म के प्रकाण्ड वेत्ता प्रभावशाली तथा सुन्दर आकृतिवाले हैं।" यह सुनकर महा-राजा के मन में भी गुरुदेव के दर्शनों की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई एवं वे सदलवल श्रावक श्राविकाओं से पूर्व ही आचार्यदेव के दर्शनार्थ पहुँच गये।

आचार्य श्री के द्वारा दिये गये धर्मोपदेश से प्रभावित होकर महाराजा मदनपाल ने उनसे नगर में पधारने की विनति की।

आचार्य श्री अपने गुरुदेव युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के दिये हुए उपदेश को स्मरण करते हुए दिल्ली नगर में प्रवेश न करने की दृष्टि से मौन रहे। उन्हें मौन देखकर पुनः महाराजा ने जब विशेष अनुरोध किया तो अन्त में आपने नगर में पदार्पण कर महाराजा मदनपाल की मनोकामना पूरी की। यद्यपि आचार्य-श्री को अपने गुरुदेव की दिल्ली न जाने की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए मानसिक पीड़ा का अनुभव होरहा था, तथापि भवित-व्यता के कारण आपको दिल्ली नगर में पदार्पण करना ही पड़ा। वहां कुछ समय तक आपने अपने उपदेशों से भव्यजीवों का कल्याण करते हुए आयुशेप निकट जानकर सं० १२२३ भाद्र-पद कृष्ण चतुर्दशी को चतुर्विध संघ से क्षमा याचना की एवं अनशन आराधना के पश्चात् आप स्वर्ग सिधार गये।

अन्तिम समय में आपने श्रावकों के समक्ष यह भविष्यवाणी की कि—"नगर से जितनी दूर मेरा संस्कार किया जायगा, नगर की बसावट उतनी ही दूर तक बढ़ती जायगी।"

इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि आचार्य श्री ने अपने स्वर्गवास के पूर्व ही संघ को बुला कर यह आदेश दिया था कि "मेरे विमान (रथी) को मध्य में कहीं विश्राम मत देना एवं सीधे नगर से बाहर उसी स्थान पर ले जाकर विश्राम देना, जहां दाहसंस्कार करना है।" शोकाकुल संघ ने इस आदेश को भूल कर मध्य में ही पूर्व प्रथानुसार विश्राम दे दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि तनिक विश्राम देने के पश्चात् जब विमान को उठाने लगे तो लाख प्रयत्न करने पर भी वह उस स्थान से लेशमात्र भी नहीं सरका। राजा मदनपाल को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने हाथी के द्वारा विमान को उठवाने की व्यवस्था करवाई; किन्तु उसमें भी सफलता नहीं मिली। अन्त में गुरुदेव का ही चमत्कार समझ कर महाराजा ने उसी स्थान पर अग्नि संस्कार करने का राजकीय आदेश प्रदान किया।

इसके पश्चात् इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण घटना के कारण गुरुदेव का अग्नि संस्कार उसी स्थान पर किया गया।

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने इस प्रकार अपना मंगलमय ऐहिक जीवन यापन कर अपने समय में जिनशासन की उन्नति के साथ कई अलौकिक कार्य किये।

विशेषतः आपने चैत्यवासी पद्मचन्द्राचार्य जैसे वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध आचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिल्लीश्वर महाराज मदनपाल को चमत्कृत करते हुए जो अभूत पूर्व कार्य

किये निस्सन्देह वे आपकी उत्कृष्ट साधना के परिचायक ही हैं। इसके अतिरिक्त आपने महत्तियाण (मन्त्रिदलीय) जाति की स्थापना कर महान् उपकार किया। आपके द्वारा संस्थापित इस जाति की परम्परा के कई व्यक्तियों ने पूर्व देश के तीर्थों का उद्धार कर शासन की महान् सेवाएं कीं।

आचार्य देव श्री जिनचन्द्रसूरिजी के ललाट में मणि थी, जिसके कारण ही 'मणिधारीजी' के नाम से आपकी प्रसिद्धि हुई। इस मणि के विषय में पट्टावली में यह उल्लेख मिलता है कि आपने अपने अन्त समय में श्रावकों से कह दिया था कि-अग्नि-संस्कार के समय मेरे शरीर के निकट दूध का पात्र रखना जिससे वह मणि निकल कर उसमें आजायगी; किन्तु गुरुवियोग की व्याकुलता से श्रावकगण ऐसा करना भूल गये एव भवितव्यतावश वह मणि किसी अन्य योगी के हाथ लग गई। कहा जाता है कि श्री जिनपतिसूरिजी ने उस योगी की स्तम्भित प्रतिमा प्रतिष्ठित-कर उससे वह मणि प्राप्त करली थी।

वस्तुतः मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी महान् प्रतिभाशाली एवं चमत्कारी आचार्य थे, इसमें सन्देह नहीं। केवल ६ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण कर ८ वर्ष की अल्पायु में आचार्य पद प्राप्त कर लेना कम विस्मय कारक नहीं है। ऐसे युग प्रधान मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के प्रति हृदय से जितनी बार श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाय, थोड़ी ही होगी।



प्रगटप्रभावी दादा श्री जिनकुशलसूरिजी

महान् प्रभावशाली अद्वितीय विद्वान् एवं जिनशासन के सुप्रसिद्ध महापुरुष परम पितामह श्री जिनकुशलसूरिजी 'दादाजी' के नाम से विशेषतया प्रसिद्ध आचार्य माने जाते हैं।

आपका जन्म मरुस्थल प्रदेश के समियाणा (सिवाना) नामक ग्राम में छाजहड़ गोत्रीय मं० देवराज के पुत्र मन्त्रिराज श्री जेसल (जिल्हागर) के यहाँ संवत् १३३७ में हुआ था। आपकी माता का नाम जयन्तश्री एवं आपका जन्म नाम करमण था।

जब आपकी आयु १० वर्ष की थी, तब खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनप्रबोधसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी, जो गृहस्थ में आपके पितृव्य (काका) होते थे, समियाणा पधारे। समियाणा में उनके धार्मिक प्रवचनों को सुनकर आपके हृदय में वैराग्य का बीजारोपण हो गया एवं तत्काल ही संयमाराधन करने का निश्चय कर आपने अपनी माताजी से अनुमति लेने के पश्चात् सं० १३४७ में फाल्गुन शु० ८ के दिन शुभ मुहूर्त्त में दीक्षा ग्रहण करली एवं आपका नाम कुशलकीर्ति रखा गया।

दीक्षाग्रहण करने के पश्चात् तत्कालीन उपाध्याय श्री विवेकसुन्दरजी के सान्निध्य में रहकर आपने विद्याध्ययन करना प्रारम्भ किया एवं कुछ ही समय में आपने अद्भुत पाण्डित्य प्राप्त करलिया। इतना ही नहीं स्वपरादि समस्त शास्त्रों में पारंगत होकर आपने न्याय, व्याकरण, ज्योतिष आदि में भी असाधारण

गति प्राप्त कर ली थी। फलस्वरूप इस प्रकार की आपकी प्रकाण्ड योग्यता को देखकर सं० १३७५ में आपको वाचनाचार्य के पद से विभूपित किया गया।

इसके पश्चात् जब आपके दीक्षागुरु आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी खण्डासराय में चातुर्मास यापन कर रहे थे उस समय उन्होंने अपना आयुशेष निकट जानकर स्वहस्त दीक्षित वाचनाचार्य श्री कुशलकीर्ति गणि को ही अपने पद के योग्यसमझा एवं इस आशय से संघ को भी आपने अवगत कर दिया। अन्त में उनके आदेशानुसार संवत् १३७७ में ज्येष्ठ कृष्णा ११ को शुभ लग्न में आपको सूरिपद से समलङ्कृत कर स्वर्गत आचार्यश्री के निर्देशानुरूप ही आपका श्री जिनकुशलसूरि नाम प्रसिद्ध किया गया।

सूरिपद महोत्सव के अवसर पर भव्य समारोह आयोजित किये गये थे, जिसमें विशेष रूप से सेठ तेजपाल ने इस प्रसंग पर मुक्तहस्त से अपने द्रव्य का सदुपयोग करते हुए महान् लाभ लिया था।

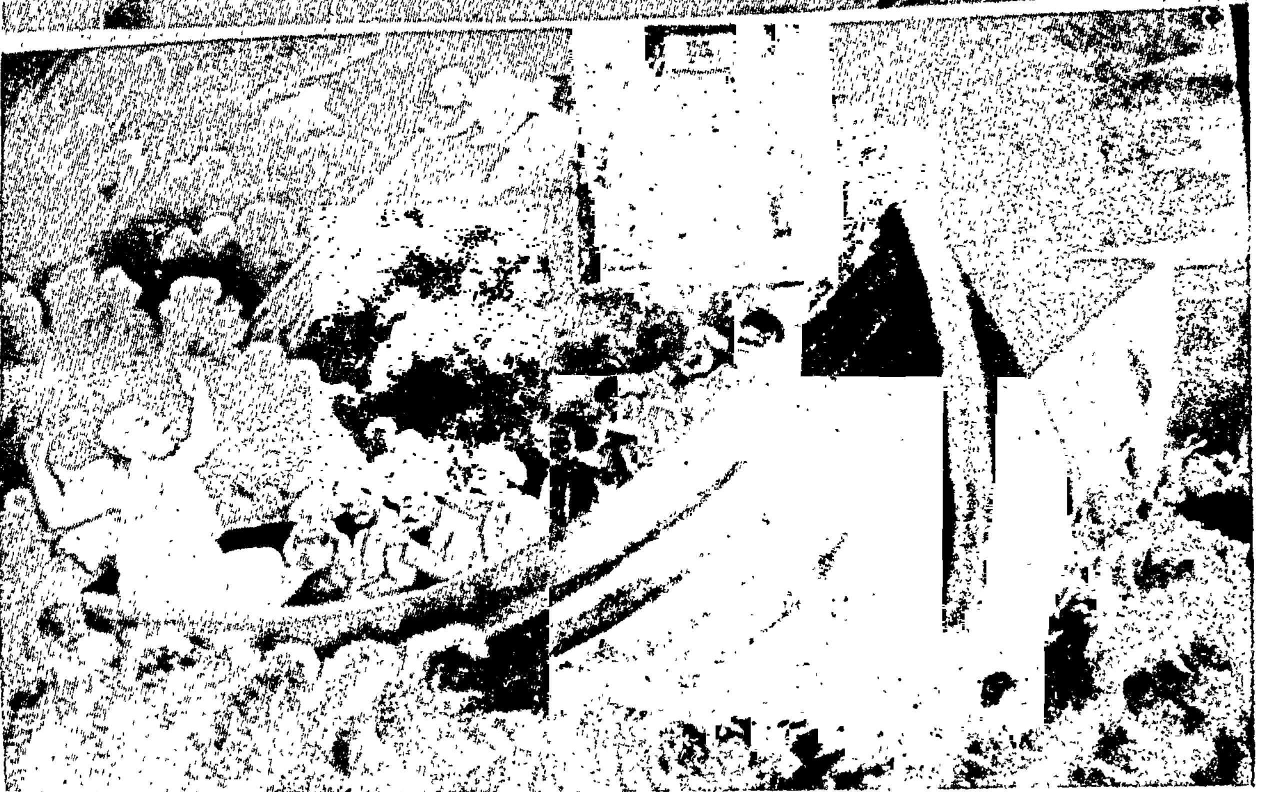
सूरिपद प्राप्त करने के पश्चात् आप दिल्लीवासी श्रीमाल ज्ञातीय सेठ रयपति के द्वारा निकाले गये संघ में सम्मिलित हुए एवं इस प्रसंग पर आपने मार्ग में कई स्थानों पर प्रतिष्ठाएँ आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न किये। विशेपतः शत्रुञ्जय तीर्थ पर दस दिन तक भारी समारोह के साथ जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठाएँ, नन्दी महोत्सव, नवनिर्मित जिनप्रासादों पर ध्वज-दण्डारोहण आदि कार्यकलापों के साथ कई कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हुए। इसी प्रकार भीमपल्ली संघ की यात्रा में सम्मलित होकर आपने संघ को लाभान्वित किया एवं जिनशासन की उन्नति की।

इस समय तक दादा श्री जिनकुशलसूरिजी की ख्याति प्रख्याति चारों ओर फैल गई थी एवं सर्वत्र आपकी प्रभावोत्पादिनी जिन-वाणी से धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था, पुनरपि ऐसे समय में सिन्धु प्रदेश जैसा क्षेत्र मिथ्यात्व प्रवृत्तियों से अत्यधिक आक्रान्त होने के कारण अधर्म क्षेत्र बनता जा रहा था। उस प्रदेश की ऐसी विषम स्थिति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते हुए आपने उसी ओर विहार करने का निश्चय किया। इधर सुयोग वश उच्चा नगर तथा देवराजपुर के श्रावकों ने भी आकर आपश्री से उस ओर पधारने की विनति की। अतएव श्रावकों की इस विनति को स्वीकार कर आप वहां पधारे। आपके पदार्पण से उस क्षेत्र की जनता में अलौकिक उत्साह एवं धर्म के प्रति श्रद्धा जागृत होने लगी। यहां तक कि आपकी अमृतमयी वाणी को सुनने के लिए हिन्दु तथा मुसलमान सभी वर्ण एवं जाति के व्यक्ति श्रद्धा के साथ सम्मिलित होकर लाभान्वित होते थे। अन्ततः परिणाम यह हुआ कि सिन्धु प्रदेश में व्याप्त मिथ्यात्व प्रवृत्तियां निर्मूल होगईं एवं अन्य पवित्र क्षेत्रों की भाँति यहां भी उत्साह पूर्वक धार्मिक क्रियाएं होने लगीं। वे सभी लोग, जो एक दूसरे को शत्रु समझते थे, परस्पर मिल कर भ्रातृभाव से रहने लगे एवं धर्म के प्रति उत्तरोत्तर श्रद्धा वढ़ने लगी। यही नहीं आपने अपने औपदेशिक प्रभाव से पचास हजार नवीन श्रावक वनाकर समाज की संख्या में वृद्धि की।

इस प्रकार अनेकानेक स्थानों पर विशेषतः सिन्धु प्रदेश जैसे स्थानों पर जहां अधार्मिकता एवं मिथ्यात्व से परिपूर्ण दूषित प्रवृत्तियाँ पनप रही थीं, अपने पवित्र पदार्पण एवं उपदेशामृत की रस वर्षा से पूर्ण धार्मिकता का संस्थापन एवं प्रचार–प्रसार करते हुए आप संवत् १३८९ में देवराजपुर पधारे। इस वर्ष का



प्रगट प्रभावी दादा श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज



दादा श्री जिनकुशलसूरिजी की देवात्मा ने डूबती हुई नौका को बचाली ।

चातुर्मास आपने यहीं किया। चातुर्मास के पश्चात् आपने अपने ज्ञान बल से स्वर्गवास समीप जानकर वहीं ठहरने का निश्चय किया। अन्ततः एक दिन अपने निर्वाण की घड़ी को सामने आती हुई देखकर आपने तरुणप्रभाचार्य एवं लब्धिनिधानोपाध्याय को आदेश दिया कि "मेरे पट्ट के योग्य पन्द्रह वर्षीय मेरा शिष्य पद्ममूर्ति है, उसी को गच्छनायक का पद समर्पित करना।"

इसी प्रकार की अन्य गच्छसंचालन सम्बन्धी कई शिक्षाएँ देकर आप फाल्गुन कृष्ण अमावास्या को दोप्रहर रात्रि व्यतीत होने के पश्चात् पंच परमेष्ठि के ध्यान में पूर्ण लीन होगये एवं नश्वर देह का परित्याग कर आपने स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

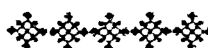
दादाजी श्री जिनकुशलसूरिजी अपनी विद्यमानता में जिस प्रकार अपने पाण्डित्य पूर्ण कौशल का प्रभावशाली परिचय देते हुए संघ का एवं भव्यजीवों का कल्याण करते रहे, उसी प्रकार स्वर्गवास के पश्चात् आज भी वे अपने भक्तों की मनोकामना की पूर्ति करने में कल्पतरु के समान हैं। जो श्रद्धालु तन्मयतापूर्वक आपका ध्यान कर आपत्ति निवारणार्थ प्रार्थना करता है, आप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसको दर्शन देकर उसकी आपत्ति दूर करते हैं। ऐसी एक नहीं अनेकों घटनाएँ आपके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती हैं, एवं श्रद्धालु भक्तों द्वारा सुनने को मिलता है कि किस प्रकार आप आज भी अपने भक्तों की सुधबुध लेकर उनका कल्याण करते हैं।

एक बार कविवर समयसुन्दरजी जब सिन्ध प्रान्त में विचरण करते हुए संघ सहित पंच नदी पार करने के लिये नौका में बैठे तो उस समय अंधियारी रात, भयंकर वर्षा एवं आंधी के कारण नौका की स्थिति डूबने जैसी होगई।

कविवर ने उसी समय अपने एक मात्र इष्ट दादाजी का ध्यान किया। फलस्वरूप तत्काल श्री जिनकुशलसूरिजी की देवात्मा ने प्रगट होकर नौका का वह संकट दूर कर दिया। ऐसी कई घटनाएँ हैं—जिनका उल्लेख यहां करना सम्भव नहीं है।

आचार्यश्री के अलौकिक प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है कि आपकी सहस्रों स्तुतियां, स्तोत्र, अष्टक, पद, छन्द, मन्दिर, मूर्त्तियां, चरण-पादुकाएं आदि यत्र तत्र सर्वत्र उपलब्ध हैं। इतने अधिक स्तवन एवं स्मारक किसी भी अन्य आचार्य के उपलब्ध नहीं होते, जितने आपके हैं। निस्सन्देह यह आपके प्रत्यक्ष चमत्कार का ही फल है कि भारत के कई ग्रामों, नगरों, तीर्थों, एवं मन्दिरों आदि में आपके स्मारक के रूप में प्रतिमाएं तथा चरण प्रतिष्ठित हैं, जिनका पूरा विवरण इसी पुस्तक में दिया जा रहा है, जिससे पाठकों को यह जानकारी मिल जायगी कि वास्तव में ये कितने महान् थे एवं आज भी इनका कितना प्रभाव है ?

ऐसे युग प्रभावक प्रभाव-प्रताप पुञ्ज सन्त शिरोमणि दादा श्री जिनकुशलसूरिजी के प्रति अपनी सनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर हम अपने को महान् भाग्यशाली मानते हैं।



अकबरप्रतिबोधक

युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी

खरतरगच्छीय आचार्यों की परम्परा में युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी का अपने विशिष्ट गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म भूतपूर्व जोधपुर राज्य के खेतसर ग्राम में संवत् १५९५ चैत्र कृष्ण १२ के दिन हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीवन्तशाह तथा माता का नाम श्रियादेवी था। जब आपका जन्म हुआ तब आपके पिताजी ने समारोह पूर्वक जन्मोत्सव मनाते हुए आपका नाम सुलतान कुमार रखा।

बाल्यकाल से ही सुलतान कुमार (चरित्र नायक) प्रभावोत्पादिनी अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए शिक्षा के साथ ही अन्य कलाओं में भी रुचि लेने लगा, जिसके फलस्वरूप उसने अल्पवय में ही सन्तोष जनक विद्वत्ता प्राप्त करली।

संयोगवश वि० सं० १६०४ में खरतरगच्छ नायक श्री जिनमाणिक्यसूरिजी अपने शिष्य समुदाय सहित खेतसर पधारे, जिनके प्रवचनामृत का पान करने के लिए सुलतानकुमार भी गया। आचार्य श्री की वाणी का प्रभाव सुलतान कुमार के निर्मल मानस पर इस प्रकार पड़ा कि उसने संसार की असारता भली भांति समझकर चारित्र धर्म पालन के हेतु दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चयकर लिया एवं इसके लिये अपनी माताजी से अनुमति लेकर तत्काल ही वि० सं० १६०४ में ही आचार्य प्रवर श्री जिनमाणिक्यसूरिजी से दीक्षा ग्रहण करली। गुरुदेव ने दीक्षा देने के पश्चात

आपका नाम 'सुमतिधीर' स्थापित किया। दीक्षा के समय हमारे चरित्रनायक की अवस्था मात्र ९ वर्ष की थी, किन्तु थोड़े ही समय में आपने ग्यारह अङ्गादि का तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन कर आशातीत विद्वत्ता प्राप्त कर ली। इतना ही नहीं आप शास्त्र वाद एवं व्याख्यान कलादि में भी निपुण होकर अपने गुरु के साथ विभिन्न प्रदेशों में विचरण करने लगे।

कालानुक्रम से सं० १६१२ आषाढ़ शु० ५ को श्री जिनमाणिक्यसूरिजी का स्वर्गवास होने के कारण सर्वसम्मति से आप ही को आचार्य पदासीन किया गया। वि० सं० १६१२ भाद्रपद शुक्ल ८ गुरुवार को आचार्य पद प्राप्ति के पश्चात् आप श्री जिनचन्द्रसूरिजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। जिस दिन आपको आचार्य पद की प्राप्ति हुई, उसी रात्रि को आपके गुरु श्री जिनमाणिक्यसूरिजी ने स्वप्न में प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे।

गच्छ का महान् उत्तरदायित्व सम्हालते हुए जब आचार्यश्री ने अपने ही गच्छ में शिथिलाचार देखा तो यह निश्चय किया कि ऐसी विषम परिस्थिति में सर्व प्रथम गच्छनायक को ही क्रियोद्धार करना अत्यन्त आवश्यक है इस विचार के अनुसार आपने संवत् १६१४ चैत्र कृ० ७ को क्रियोद्धार कर नवीन आदर्श की स्थापना की तथा गच्छ की सुव्यवस्था के साथ ही साधुओं के लिए उत्कृष्ट चारित्र पालन के कई कठोर नियम बनाये, जिनका पालन करना प्रत्येक साधु के लिये अनिवार्य था। इस प्रकार गच्छ में त्यागपूर्ण आदर्श की स्थापना के पश्चात् आचार्य श्री ने अपने कार्य कलापों द्वारा कई श्रावकों को जैनदर्शन का सद्बोध दिया।

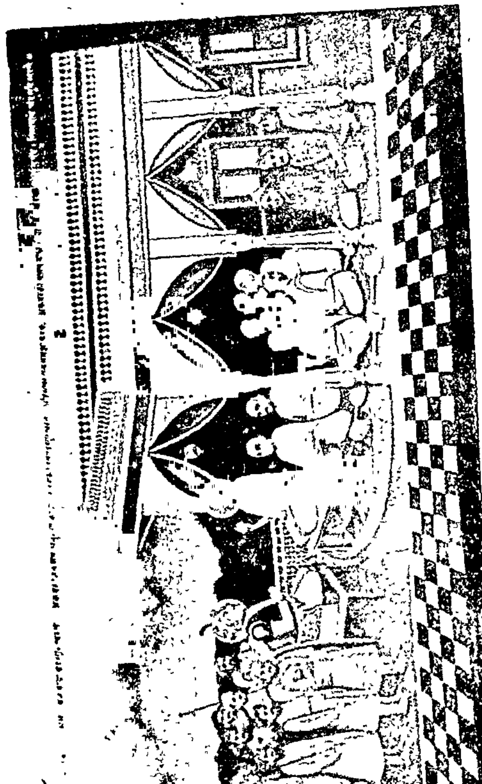
आपकी विद्वत्ता एवं जैनधर्म की तत्त्वज्ञता से प्रायः उस समय के सभी आचार्य प्रभावित रहते थे। एक बार सं० १६१७ में जब

आपका चातुर्मास पाटन में था, उस समय तपागच्छीय श्री धर्मसागरजी ने नवाङ्गीवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरिजी के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रगट करते हुए यह कहा कि श्री अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के नहीं हैं। चरित्रनायक श्री जिनचन्द्रसूरिजी द्वारा खरतरगच्छ के आचार्य के नाते उक्त मन्तव्य का निराकरण करने के हेतु पाटन स्थित समस्त गच्छों के आचार्यों एवं साधुओं को एक स्थान पर आमन्त्रित कर इन सबके समक्ष शास्त्रार्थ करने के लिए धर्मसागरजी को बुलाया गया, किन्तु वे नहीं आये। अन्ततः एकत्रित समस्त महानुभावों ने ४१ प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक आधार पर यह निर्णय दिया कि नवाङ्गीवृत्तिकार श्री अभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ के ही हैं। साथ ही समस्त आचार्यों एवं मुनियों ने धर्मसागरजी को उत्सूत्र भाषी सिद्ध किया और वे जैनसंघ से बहिष्कृत भी कर दिये गये। यही नहीं तत्कालीन तपागच्छ के आचार्य श्री विजयदानसूरिजी ने तो इनकी लिखी हुई पुस्तकों को जल शरण करवाते हुए इन्हें अपने गच्छ से पृथक् भी कर दिया। इस प्रकार आपके प्रखर पाण्डित्य एवं उत्कृष्ट चारित्र्य के कारण आपका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़े बिना नहीं रहता था। आपकी विद्वत्ता तथा त्यागमयी यह कीर्ति सुरभि चारों ओर फैलती हुई संयोगवश बादशाह अकबर के दरबार तक भी पहुंच गई।

सम्राट् अकबर अपने समय के उच्चकोटि के धर्म जिज्ञासु एवं धर्म प्रेमी थे। अपनी इसी धर्म जिज्ञासा की पूर्ति के हेतु वे प्रायः प्रत्येक धर्म के विद्वानों तथा आचार्यों से सम्पर्क साधते रहते थे। एक समय जब उन्होंने विद्वानों से हमारे चरित्र नायक आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी की प्रशंसा सुनी तो जैन धर्म का विशेषज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से उनके हृदय में आचार्य श्री

के दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा हुई। अतः इसकी पूर्ति के लिये उन्होंने आचार्यप्रवर की सेवा में इस आशय का विनतिपत्र प्रेषित किया कि "कृपया आप लाहौर पधार कर अपने सद्दु-बोधन द्वारा हमें अनुगृहीत करें।" आचार्यश्री ने सम्राट् की विनति को स्वीकार करते हुए जैन धर्म एवं उसके सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के हेतु पारमार्थिक दृष्टि से विहार कर सं० १६४८ में फाल्गुन शुक्ल १२ को शुभ योग में लाहौर नगर में प्रवेश किया। नगर प्रवेश के पूर्व आचार्य श्री के शुभागमन का सन्देश लेकर जो व्यक्ति लाहौर गया था उसको मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र ने सुवर्ण रसना (जिह्वा) एवं कर-कंकण आदि बहुमूल्य वस्तुओं का पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

नगर में प्रवेश करते ही असंख्य नर-नारियों एवं मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र के साथ सम्राट् ने सूरिजी का हार्दिक अभिनन्दन किया। आचार्य श्री ने जब अपना सद्उपदेश प्रारम्भ किया तो सम्राट् अकबर के हृदय में अपार प्रसन्नता हुई एवं नित्यप्रति के सदुपदेशों से प्रभावित होने के फलस्वरूप उनकी आचार्य श्री पर अपार श्रद्धा एवं जैन दर्शन के प्रति आदरभावना उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। यहां तक कि एक समय सम्राट् के पुत्र सलीम के मूल नक्षत्र में कन्या उत्पन्न हुई। मूल नक्षत्र में जन्म होने से ज्योतिषियों ने कहा कि इस कन्या का जन्म पिता के लिये अनिष्ट-कारक है। अतः इसका मुख भी न देखकर परित्याग कर देना चाहिये। ऐसी स्थिति में सम्राट् ने उक्त दोष के निवारणार्थ अन्य कुछ उपाय न करते हुए मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र से परामर्श कर जैनदर्शन के अनुसार भारी समारोह पूर्वक चैत्र शु० १५ को श्री सुपार्श्वनाथजी के मन्दिर में सोने चांदी के कलशों से



आचार्यश्री के सदुपदेशों से प्रभावित होकर जीवहिंसा न करने के निकालेगये आदेश-
पत्रों (फरमानों) में से एक फरमान

जिसे सम्राट् अकबर ने ता० ३१ खुरदाद इलाही सन् ४९ में
फारसी भाषा में निकाला था।

अष्टाह्निकामादि शाही फरमान नं० १

अष्टोत्तरी स्नात्र करवाया जिसमें एक लाख रुपये व्यय हुए। इसप्रकार सम्राट् अकबर जैन धर्म एव उसके सिद्धान्तों के प्रति अटूट श्रद्धा करते थे। इसका एकमात्र कारण आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी ही हैं, जिनके प्रतिबोध से सम्राट की भावना इस सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त हुई। सम्राट अकबर भी अपनी इस सद्भावना-जागृति का श्रेय आचार्यश्री को ही देते थे। वे आपको "बड़े गुरु" के नाम से सम्बोधित करते थे। अपने इन्ही 'बड़े गुरु' की वाणी से प्रभावित होकर बादशाह ने कई तीर्थ क्षेत्रों की रक्षा के, जीवहिंसा न करने के तथा जैनधर्म की क्रियाओं में व्यवधान न पहुँचाने के आदेश-पत्र (फरमान) निकाले, जिनकी प्रतिलिपियां आज भी प्राचीन भण्डारों में देखी जासकती हैं।

एक समय जब हमारे चरित्रनायक श्री जिनचन्द्रसूरिजी लाहौर में विराजते थे, उस समय मन्त्रीश्वर श्री कर्मचन्द्र से यह जानकर कि नौरंगखान नामक किसी मुसलमान अधिकारी ने द्वारिका के जैन मन्दिरों को नष्ट कर दिये हैं, सूरिजी ने सम्राट् के समक्ष शत्रुञ्जय आदि तीर्थों एवं जैनमन्दिरों का माहात्म्य बतलाया तथा उनकी उचित व्यवस्था के लिये आदेश दिया तो सम्राट् ने आचार्य श्री की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए समस्त तीर्थों की रक्षा के लिये एक फरमान निकलवाकर समस्त जैन-तीर्थ मन्त्रीश्वर के आधीन कर दिये।

इसी प्रकार बादशाह ने अहमदाबाद के तत्कालीन सूबेदार अजमखान को शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों की रक्षा का विशेष आदेश देकर ऐसा फरमान दिया जिससे महातीर्थ शत्रुंजय म्लेच्छों के उपद्रवों से सुरक्षित रहा। इसके अतिरिक्त सूरिजी को

अपने रजोहरण को मन्त्र शक्ति से टोपी को लाने के लिये छोड़ा। सूरिजी द्वारा छोड़े गये रजोहरण ने तत्काल काजीजी की टोपी का पीछा किया और उसक ड़ित करते हुए पुनः लाकर यथा-स्थान काजीजी के मस्तक पर रखदी। सूरिजी के इस अद्भुत चमत्कार से काजीजी चकित होकर रह गये।

एक घटना और इसी प्रकार की कही जाती है कि एक समय सूरिजी के एक शिष्य ने किसी मौलवी द्वारा तिथि पूछने पर भूल से अमावस के वदले पूर्णिमा वतलादी। इस पर मौलवी ने उपहास करते हुए चारों ओर यह प्रचार कर दिया कि "आज अमावास्या है, परन्तु जैनसाधु के कथनानुसार आसमान में पूर्णिमा का चन्द्रमा प्रकाशित होगा।" सूरिजी के उन शिष्य को भी अपनी भूल स्मरण हो आई एवं उन्होंने आचार्यश्री को सारा वृत्तान्त कह दिया।

मौलवी द्वारा किये गये इस प्रचार की सूचना वादशाह के दर-बार तक पहुँच गई थी। ऐसी स्थिति में जैनशासन की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए किसी श्रावक के यहाँ से स्वर्णथाल मंगवाकर उसे मन्त्र बल से आसमान में उड़ादी, जिससे वह थाल पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान ही सर्वत्र प्रकाशित होने लगी। वादशाह ने उस प्रकाश की जांच बारह कोस तक करवाई, किन्तु सर्वत्र पूर्णिमा का ही प्रकाश था। यह सुनकर वादशाह अत्यन्त ही चकित एवं प्रसन्न हुए।

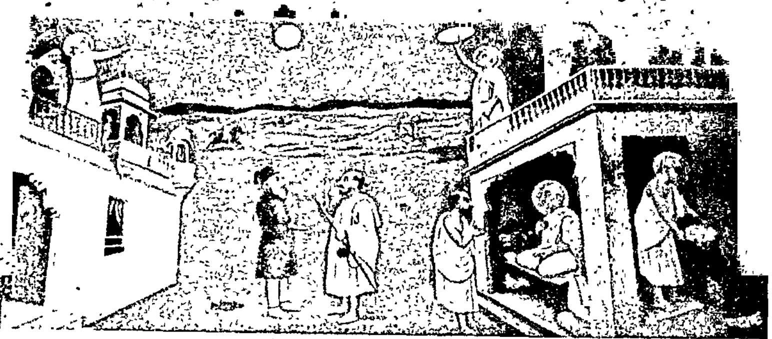
ऐसी एक नहीं अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएं हैं, जिनसे आचार्यश्री के तपोवल, मन्त्रवल, ज्ञानबल तथा योगबल का परिचय प्राप्त होता है। इसी प्रसंग में एकबार संवत् १६५२ माघ



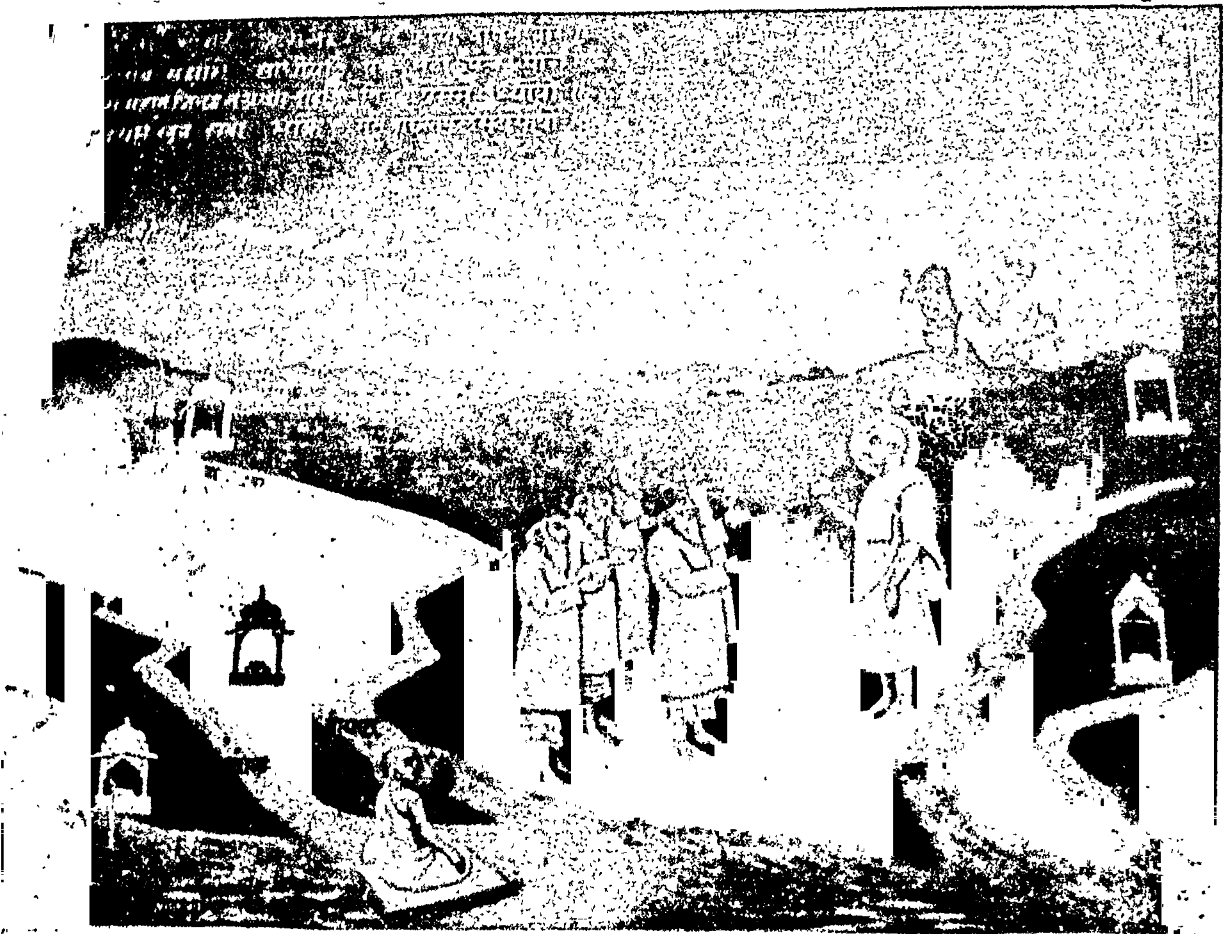
गुरुदेव के कथनानुसार भूगर्भ में से बकरी के तीन बच्चे निकले



आचार्यश्री के रजोहरण से काजीजी की टोपी पुनः यथा स्थान आगई



आचार्यश्री ने स्वर्णथाल आसमान मे उड़ाकर अमावस्या के अन्धकारको
पूर्णिमा के प्रकाश में परिवर्तित कर दिया ।



पंच नदी के पांचों पीरों को गुरुदेव ने अपने वश में कर लिया।

शु० १२ रविवार को शुभ मुहूर्त्त में बादशाह के आग्रह से तथा संघ की उन्नति के हेतु सूरिजी ने पंचनदी के अधिष्ठायक देवों की भी साधना कर उनको वश में किया था।

ऐसे कई चमत्कार पूर्ण कार्यों के साथ आचार्य श्री ने अनेकों स्थानों पर जिनालयों की तथा देव, गुरु की प्रतिमाओं एवं चरणों की प्रतिष्ठाएं करते हुए शासन सेवा की।

बादशाह अकबर के देहावसान के पश्चात् यद्यपि उनके शाहजादा सलीम (नुरुद्दीन जहांगीर) सूरिजी तथा जैनसाधुओं का आदर करते थे, तथापि मद्यपान एवं क्रोधी स्वभाव के होने के कारण एक बार संवत् १६६८ में किसी शिथिलाचारी वेशधारी दर्शनी को अनाचार वृत्ति का सेवन करते देखकर उसको राज्य-निर्वासित कर दिया और यह आदेश भी प्रसारित कर दिया कि जितने भी जहां कहीं भी दर्शनी हों उन्हें गृहस्थी बना दिये जांय अथवा उन्हें मेरे राज्य से बाहर निकाल दिए जांय। इस शाही फरमान से दर्शनी लोग त्रस्त होगये।

बादशाह सलीम के इस शाही फरमान की जानकारी जब सूरिजी को प्राप्त हुई, तब आप उक्त संकट के निवारणार्थ एवं जैनशासन की रक्षा करने के लिये ७६ वर्ष की वृद्धावस्था में भी शीघ्र विहार करके आगरा पधारे। इधर जब बादशाह को आचार्य श्री के पधारने के समाचार मिले तो उन्होंने राज्याज्ञा भङ्ग न हो, इसलिये सूरिजी को राजमार्ग से न पधार कर लोकोत्तर मार्ग से प्रवेश करने को कहलाया। बादशाह की इस राज्याज्ञा को, जिनशासन की प्रभावना के हेतु मान देते हुए सूरिजी ने अपनी ऊनी कमली को यमुना नदी में बिछादी और मन्त्र शक्ति द्वारा उसीके ऊपर आसीन हो, यमुना नदी पार की एवं इस प्रकार

स्थलमार्ग से न पधार कर आचार्यश्री लोकोत्तर मार्ग (जलमार्ग) से राजप्रासाद में पधारे। ऐसी अद्भुत शक्ति एवं चमत्कार से बादशाह का चमत्कृत एवं चकित होना स्वाभाविक था।

अपने पूज्य युगप्रधान गुरु के इस प्रकार दर्शन कर बादशाह को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आचार्य श्री ने बादशाह के द्वारा निकाले गये शाही फरमान की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उनसे कहा कि—"बादशाह, एक व्यक्ति के दोष से सारा समाज दोषी नहीं होता। अतः तुमने जो साधुविहार बन्द करते हुए आदेश प्रसारित किया है, उसे निरस्त कर जैनशासन की अभिवृद्धि में अपना सहयोग दो।"

सूरिजी के प्रति श्रद्धा होने के कारण बादशाह उनका आदेश कैसे टाल सकते थे? उन्होंने तत्काल दूसरा फरमान निकालकर जैनसाधुओं पर लगाये गये सभी प्रतिबन्ध हटादिये।

इसप्रकार आपके प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के कारण एक ओर जहां बाहशाह की बुद्धि में परिवर्तन हुआ, वहां दूसरी ओर जिनशासन की भी भारी उन्नति हुई।

आचार्यश्री जीवन पर्यन्त ऐसे कई सत्कार्यों को करते हुए जब बीलाड़ा नगर में चातुर्मासिक-आवास में विराजमान थे, तब ज्ञानोपयोग से अपना आयु शेष जानकर शिष्यों तथा श्रावक-श्राविकाओं को सदुद्बोध प्रदान करते हुए उन्होंने कहा—"यह मेरा पौद्गलिक देह अब विसर्जित होने वाला है, अतः तुम जिनशासन की उन्नति करने के साथ साथ आत्मोन्नति में भी सदा लगे रहना। गच्छका भार "जिनसिंहसूरि" वहन करेंगे, तुम सब सर्वदा उनकी आज्ञा का पालन करना।"

इस प्रकार सबको समुचित शिक्षा एवं आदेश देकर आचार्यश्री ने शुद्धमन से चतुर्विध संघ तथा चौरासीलक्ष जीवयोनि को क्षमत क्षामणा करते हुए चार प्रहर का अनशन पालन किया एवं उत्कृष्ट धर्मध्यान में लीन होकर अपने पौद्गलिक देह को विसर्जित करते हुए आश्विनकृष्ण २ के दिन स्वर्गधाम सिधारे।

संघ ने शोकसन्तप्त हो, आपका अग्निसंस्कार किया। अग्निसंस्कार के कारण वह पुद्गलपुञ्ज तो सबके देखते देखते भस्म होगया, किन्तु सूरिजी के अतिशय प्रताप से आपकी मुखवस्त्रिका (मुंहपत्ती) नहीं जल पाई; अस्तु।

आचार्यश्री जिनचन्द्रसूरिजी वस्तुतः महान् तपस्वी एवं प्रभावशाली थे। अकबर जैसे बादशाह को प्रतिबोध देकर कितने भव्यजीवों का आपने उपकार किया, यह अवर्णनीय है? ऐसे जिनशासन के महान् प्रभावक तथा बादशाह अकबर को प्रतिबोध देकर प्राणियों का कल्याण करने वाले अकबर प्रतिबोधक युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक मानव का परम धर्म एवं कर्तव्य है।



श्री जिनदत्तसूरि-अष्टकम्

नमाम्यहं श्री जिनदत्तसूरिं, गुणाकरं किन्नरपूज्यपादम् ।
यतीश्वरं तुष्टिकरं स्वरूपं, लावण्यगात्रं बहुसौख्यकारम् ॥१॥
भूपा नरा ये प्रणमन्ति नित्यं, तेषां मनीषा सफली करोति ।
लक्ष्मीर्यशो राज्यरतिप्रभूतिं, विद्याधरश्रीललनासुखानि ॥२॥
भक्ता नरा ये तव पादसेवां, कुर्वन्ति शन्तेऽत्र लभन्त एव ।
न दुःखदौर्भाग्यभयं न मारि, स्मरन्ति ये श्री जिनदत्तसूरिम् ॥३॥
कविः स्वबुद्ध्या गुरुसन्निभोऽपि, नास्ते गुणान् वर्णयितुं समर्थः ।
तथापि त्वद्भक्तिरतो मुनीन्द्र ! करोमि किञ्चिद्गुणवर्णनं ते ॥४॥
महार्णवे भूधरमस्तकेऽपि, स्मरन्ति ये श्री जिनदत्तसूरिम् ।
सुखैः सहायान्ति जनाः स्वधाम्नि, ततो भवन्तं प्रणमामि कामम् ॥५॥
जैनाब्जसम्बोधनपूर्णचन्द्र, सत्सेवकं कामितकल्पवृक्षः ।
युगप्रधानस्स्तुतसाधुसूरिः, सूरीश्वरः श्री जिनदत्तसूरिः ॥६॥
न रोग शोका रिपुभूतयक्षाः, न च ग्रहा राक्षसदैवरौराः ।
ते नाममात्रात्तु न पीडयन्ति, तस्मान्नराणां शिवदायकस्त्वम् ॥७॥
इत्थं गुरोरष्टकमुत्तमं यः, प्रभातकाले प्रपठेत्सदैव ।
किं दुर्लभं तस्य जगत्त्रयेऽपि, सिद्ध्यन्ति सर्वाणि समीहितानि ॥८॥



[illegible] ५७ गोत्र स्थापित किये [illegible]

कांकरिया	दूगड़	[illegible]	सुचन्तिया
कास्या	दूगड़िया	[illegible]	सोमरीया
कोचरा	धाड़ीवाल	[illegible]	सावसुखा
कोठारी	नारायण	[illegible]	सामसुखा
खजांची	मुकीम	[illegible]	सुखाणी
गांग	रांका	श्रीश्रीमाल	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	हरकावत
चोरड़िया	[illegible]	[illegible]	
चापरा	नवलखा	[illegible]	
[illegible]	नाहटा	[illegible]	
[illegible]	नाहर	[illegible]	
भूरा	[illegible]	बाफना	
छाजेड़	पारख	बुथा	
जिन्दाणी	पुगलिया	बोथरा	
[illegible]	फोफलिया	बोहरा	
[illegible]	बच्छावत	भंसाली	
[illegible] महता	रामसेना		

गुरुदेव द्वारा संस्थापित ५७ गोत्र

* श्री जिनदत्तसूरिगुरुभ्यो नमः *

दादावाड़ी-दिग्दर्शन

●

असम
एवं
उत्तरपूर्वीय सीमान्त-अभिकरण

गवालपाड़ा–

यहाँ ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर स्थित श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिर में दादाजी के दो चरणयुगल विराजमान हैं। यह प्राचीन मन्दिर सं० १९५४ में भूकम्प के कारण नष्ट होगया था। इसके पश्चात् उसी स्थान पर नवीन मन्दिर का निर्माण कराया गया, जिसकी प्रतिष्ठा सं० १९९८ में हुई।

तेजपुर–

असम राज्य के इस नगर में श्री जिनकीर्तिसूरिजी द्वारा विक्रम संवत् १९५७ में ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी शुक्रवार के दिन प्रतिष्ठित युगप्रधान दादाजी श्री जिनदत्तसूरिजी की चरण-पादुकाएँ हैं।

(चरणपादुका का लेख)

संवत् १६५७ वर्षे ज्येष्ठ शुक्ल १२ तिथौ गुरुवासरे श्री जिन-कीर्तिसूरिप्रतिष्ठितं श्री जिनदत्तसूरि नाम पादुका. का. ।

मानकाचर–

यहाँ दादावाड़ी में दादाजी के चरण हैं ।



आन्ध्र

कुलपाकजी–

आन्ध्र राज्य के अन्तर्गत दक्षिण हैद्राबाद के समीप स्थित इस ग्राम के बाहर श्री माणिक्य स्वामी का विशाल मन्दिर बना हुआ है, जिसकी गणना प्राचीन जैन-तीर्थधामों में की जाती है । इस मन्दिर की सीमा में ही पृथक् एक छत्री बनी हुई है, जिसमें विक्रम संवत् १६७० आषाढ़ शुक्ल में पं. नेमीचन्दजी द्वारा प्रतिष्ठित श्री जिनदत्तसूरिजी की तथा विक्रम संवत् २०१६ पौष शुक्ल त्रयोदशी को श्री कान्तिसागरजी एवं दर्शनसागरजी द्वारा प्रतिष्ठित श्री जिनकुशलसूरिजी की चरणपादुकाएँ हैं ।

बोलारम–

हैद्राबाद से अनुमानतः १४ मील दूर इस ग्राम में स्थित मन्दिर में दादा श्री जिनकुशलसूरिजी की चरणपादुकाएँ हैं ।

सिकन्दराबाद–

हैद्राबाद के समीप ही उपनगर के रूप में प्रसिद्ध इस नगर में श्री आदीश्वर भगवान के मन्दिर के ऊपरी भाग में श्रीजिनदत्तसूरि एवं श्री जिनकुशलसूरिजी की चरण पादुकाएँ हैं ।

हैद्राबाद–

दक्षिण भारत में भूतपूर्व निजाम राज्य की राजधानी के रूप में सुप्रसिद्ध यह नगर वर्तमान समय में आन्ध्र राज्य का एक विशिष्ट नगर है। यहाँ "चार कमान" के समीप मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान का भव्य मन्दिर है, जो यहाँ के अन्य जैन मन्दिरों में मुख्य माना जाता है। इसमें दादाजी श्री जिनदत्तसूरिजी तथा श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण हैं।

(श्री जिनदत्तसूरिजी के चरणों का लेख)

संवत् १९६१ का वर्षे मिती माघ सुदी ५ गुरुवासरे श्री जं. युगप्रधान जगद् चूड़ामणि दादा साहिब १००८ श्री श्री जिनदत्तसूरिगुरुराज चरणपादुका श्री चार कमान का श्री संघेन कारापितं। पं० चारित्रसुखेन प्रतिष्ठापितम्। श्री संघस्य कल्याण खेम कुशलम्। समुपस्थित॥ हैद्राबाद॥

(श्री जिनकुशलसूरिजी के चरणों का लेख)

संवत् १९६१ वर्षे मिती माघ सुदी ५ दिने जं. युगप्रधान १००८ दादा साहेब जिनकुशलसूरि पादुका.। चारकमाणं।

इसी स्थान पर संवत् १९८४ में भी प्रतिष्ठित श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण हैं।

(श्री जिनकुशलसूरिजी के चरणों का लेख)

श्री जिनकुशलसूरि चरणपादुकाभ्यो नमः। शुभ संवत् १९८४ वैशाख धवल १० गुरुवासरे प्रतिष्ठितम्॥

इसके अतिरिक्त रेल्वे स्टेशन से कुछ दूर एक विशाल दादावाड़ी बनी हुई है, जो अत्यधिक भव्य एवं दर्शनीय है।

इसकी प्रतिष्ठा संवत् १८७१ जेष्ठ शु० ४ सोमवार को भट्टारक वृद्ध आचार्य गच्छ श्री चन्द्रसूरीश्वरजी समृद्ध द्वारा की गई। समय समय पर इसकी व्यवस्था वदलती रही। सबसे पहिले कारवान में रहने वाले जैन समाज की सामुदायिक देख-रेख में इसकी व्यवस्था थी। उसके पश्चात् परिस्थितिवश सेठ अमरसी सुजानमल-जी के नाम से यहाँ सेठ चाँदमलजी ढढ्ढा बीकानेर वालों की एक दूकान थी उसके अन्तर्गत सारा कार्य होता रहा। अब लगभग बीस वर्षोंसे संघ ने एक चार सदस्यों की समिति बनाकर इसकी व्यवस्था उसके नेतृत्व में करदी है। समिति के प्रधान श्री इन्द्रमलजी लूणिया व श्री रघुनाथमलजी अमोलकचंद जी संघ के व्यय खाते में प्रतिवर्ष ७००) ८००) रुपये की पूर्ति अपनी ओर से करते हैं।

दादावाड़ी में सर्वप्रकार की उत्तम एवं सुन्दर व्यवस्था है। अभी चार वर्षों से प्रतिपूर्णिमा को रात्रि जागरण होता है।

दादावाड़ी का जीर्णोद्धार कुछ समय पूर्व किया गया था। इस सम्बन्ध में प्रमुख भाग लेने का श्रेय स्व० सेठ रघुनाथमलजी संघवी को है।

इसी प्रकार यहाँ बेगम बाजार में स्थित मन्दिर में भी श्री जिनदत्तसूरिजी के चरण तथा सुलतान बाजार में श्री जिन-कुशलसूरिजी के चरण हैं।



उत्तर प्रदेश
एवं
दिल्ली

अनूपशहर–

यहाँ दादाजी के चरण हैं।

अयोध्या–

उत्तर प्रदेश का प्राचीन एवं प्रसिद्ध यह नगर प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है। जैन ग्रन्थों की मान्यतानुसार ज्ञान एवं संस्कार का आलौकिक प्रकाश सर्वप्रथम इसी भूमि में से प्रगट होकर चारों ओर फैला था। आदिजिनेश्वर श्री ऋषभदेव, श्री अजितनाथ भगवान, श्री अभिनन्दन स्वामी, श्री सुमतिनाथ प्रभु एवं श्री अनन्तनाथजी आदि के जन्मस्थान होने का गौरव भी इसी नगर को प्राप्त है। इसी प्रकार श्री ऋषभदेव भगवान ने यहीं दीक्षा लेकर श्रमणसंस्कार के ज्ञान की दिव्य-ज्योति प्रज्वलित की थी। श्री रामचन्द्रजी के समय में तो इस नगर की विशेष ख्याति थी ही।

वर्तमान समय में भी यहाँ के कटरा मोहल्ले में श्वेताम्बर जैनों का तीर्थधाम-सा है।

यहाँ कोट के मध्य में श्री अजितनाथ भगवान का देवालय है, जिसके समीप पृथक् रूप से बनी हुई छत्री में संवत् १८७७ में प्रतिष्ठापित श्री जिनकुशलसूरिजी की चरणपादुका हैं।

(चरणपादुका का लेख)

सं० १८७१ राधराकायां पितामहानां श्री जिनकुशलसूरीणाम-योध्यायां चरणन्यासः पू० श्री जिनहर्ष सूरिणा खरतरभट्टारक श्री जिन-लाभसूरिशिष्योपाध्याय श्री हीरधर्मोपदेशेन कारितः जयनगर वासिना-अधुना मिरजापुरस्थेन सेठ हुकमचन्द जैन उदयचन्देन श्रेयोऽर्थः ।

आगरा—

आगरा नगर आज अपनी अतीतकालीन स्थिति का परि-चय देता हुआ यमुना नदी के किनारे पर स्थित है।

पुरातन काल के उपलब्ध, यहाँ के अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ किसी समय प्रसिद्ध एवं विशाल जैन मन्दिर था, जिसमें बीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रतस्वामी की मूर्ति विराज-मान थी।

अपनी प्राचीन परम्परा के अनुसार आज भी यहाँ जैन-मन्दिर, उपाश्रय एवं जैन धर्मशालाएं हैं।

यहाँ निम्नलिखित स्थानों पर दादाजी श्री जिनदत्तसूरिजी एवं श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण इस प्रकार प्रतिष्ठित हैं :—

१. मोतीकटरा नामक मोहल्ले में स्थित श्री सूरप्रभुजी के मन्दिर में दादा श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण हैं, जिनकी प्रतिष्ठा संवत् १९४३ में चैत्र शु० १३ के दिन वैद मूथा श्री अगर-मलजी द्वारा हुई थी।

२. मोतीकटरा में ही श्री केशरियानाथ भगवान के मन्दिर के पृष्ठभाग में निर्मित उद्यान में दादाजी श्री जिनदत्तसूरिजी के चरण हैं, जिनकी प्रतिष्ठा संवत् १८४४ में श्री चतुर्भुजजी लोढा के द्वारा हुई थी।

३. मोतीकटरा के श्री वासुपूज्य जी के मन्दिर में दादा श्री जिनदत्तसूरिजी के प्राचीन चरण विराजमान हैं।

४. सेठ के वाग में स्थित श्री महावीरस्वामी के मन्दिर में संवत् १६४४ में प्रतिष्ठापित श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण हैं।

५. लक्खो के वाग में सेठ तेजकरण चाँदमलजी द्वारा प्रतिष्ठापित श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण हैं।

६. इसी प्रकार नगर से वाहर शाहगंज भोगीपुरा में एक दादावाड़ी है, उसमें श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण प्रतिष्ठित हैं जिनका लेख इस प्रकार है :—

(श्री जिनकुशलसूरिजी के चरणों का लेख)

श्री अर्गलपुरे शाहगंजे प्रथम प्रतिष्ठा संवत् १७७६ मिती ज्येष्ठ सुदी १५ खरतर गच्छे श्री १०८ श्री जिनकुशलसूरिजी के पादुके! संवत् १६६४ मिती ज्येष्ठ सुदी ३ गुरुवार प्रतिष्ठा समय विद्यमान श्री तपागच्छ उपाध्याय श्री वीरविजयजी। *

कानपुर—

यहाँ श्रीधर्मनाथ स्वामी के मन्दिर में श्री जिनकुशलसूरिजी की चरणपादुकाएँ विराजमान हैं।

---

* 'जैनतीर्थ सर्वसंग्रह' नाम की पुस्तक के द्वितीय भाग के पृष्ठ ४४० पर यह बताया गया है कि यह दादावाड़ी श्री हीरविजयसूरिजी की है और इसके बाहरी भाग में भी श्री हीरविजयसूरिजी महाराज के ही चरण हैं, परन्तु ऊपर जो लेख दिया गया है उसमें श्री हीरविजयसूरिजी महाराज के चरणों का कोई उल्लेख नहीं है। अतः भूल से या सही सूचना के अभाव में ही ऐसा उस पुस्तक में लिख दिया गया हो, यह मालूम होता है।

चन्द्रावती--

वाराणसी के समीप ही गंगा तट पर वसे हुए इस ग्राम में श्री चन्द्रप्रभुजिनेश्वर का दर्शनीय मन्दिर है। इस मन्दिर के वाहर प्राचीन समय में एक छत्री थी, जिसमें दादाजी के चरण विराजमान थे। संयोगवश किसी समय गंगा में वाढ़ आ जाने से छत्री तो नष्ट होगई किन्तु चरण-पादुकाएँ सुरक्षित-सी रहीं एवं वर्तमान समय में वे वहीं मन्दिर में विराजमान हैं।

दिल्ली--

भारतवर्ष के प्रधान नगरों में दिल्ली की गणना प्रमुख रूप से की जाती है। प्राचीन इतिहास के आधार पर भारत के कई राजाओं, महाराजाओं एवं सम्राटों ने इस नगर को अपनी राजधानी वनाया था। आज भी दिल्ली स्वतन्त्र भारत की राजधानी है। प्राचीन समय से हो राजधानी होने के कारण प्रायः इस नगर का जैन-धर्म से निकट सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि यहाँ के जैनमन्दिर ऐतिहासिक दृष्टि से अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

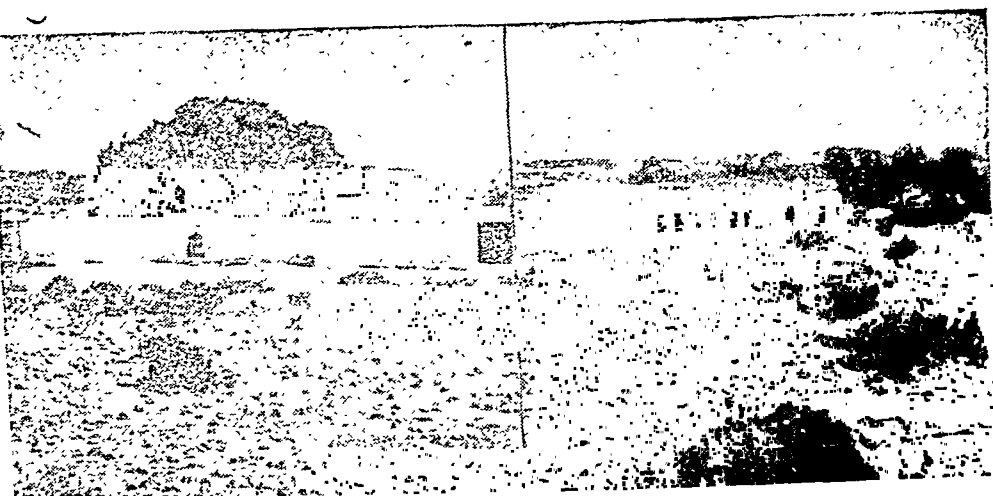
यहाँ के किनारी वाजार के समीप चीराखाना मोहल्ले में श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान का शिखरयुक्त देवालय है, जिसके अन्दर दादाजी की चरणपादुकाएँ हैं। इसी प्रकार नवघरा मोहल्ले में स्थित श्री सुमतिनाथ भगवान के विशाल एवं भव्य मन्दिर में तथा किनारी वाजार में ही शिवाला गली के समीप मूलनायक श्री सम्भवनाथ भगवान के मन्दिर में दादाजी के चरण विराजमान हैं।

इसके अतिरिक्त दिल्ली नगर से कुतुबमीनार जाते समय मार्ग से कुछ दूर छोटी दादावाड़ी के नाम से एक दादावाड़ी

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज का



दिल्ली स्थित समाधिमन्दिर (दादावाड़ी)



दिल्ली स्थित दादावाड़ी के बाहर का अनुपम दृश्य

बनी हुई है। इसमें श्री जिनकुशलसूरिजी की चरणपादुकाएँ हैं, जिनकी प्रतिष्ठा वि० संवत् १८७१ में हुई एवं जीर्णोद्धार सं० १६०८ में किया गया। यह यहाँ के लेखों से ज्ञात होता है।

(श्री जिनकुशलसूरिजी की चरणपादुका का लेख)

संवत् १८७१ वर्षे वैशाख शुक्ल पक्षे तिथौ ८ बुधे भट्टारक श्री जिनकुशलसूरिपादुका कारिता श्री स्याहजानावाद नगर वास्तव्य श्री संघेन प्रतिष्ठितं च वृहद्भट्टारक खरतरगच्छीय श्री जिनचन्द्रसूरिभिः स्वश्रेयोऽर्थं श्रीमद्वादस्याह श्रकबरस्याह विजयराज्ये शुभं भूयात् ॥

(जीर्णोद्धार का शिलालेख)

सं० १६०८ मिती चैत्र शु० १२ सूर्यवारे श्री जिननन्दीवर्धन-सूरिभिः विजय सधर्मराज्ये श्री दिल्लीनगरवास्तव्य सकल संघेन जीर्णोद्धार पूर्वकं कारापितं पूज्याराधकानां मङ्गलमाला वृद्धितरां यायात्। श्रीमान् माणिक्यसूरि शाखायां पाठक यतिकुमार तच्छिष्य हर्षचन्द्रोपदेशात्।

इसी प्रकार कुतुबमीनार के समीप ही महरौली से कुछ दूर 'दादा गुरु का रास्ता' नामक स्थान पर विशाल दादावाड़ी है। इसमें मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरीश्वरजी का समाधिस्थल (अग्निसंस्कार का विशेष स्थान) है। यहीं आदीश्वर भगवान के मन्दिर में इन्हीं मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी की प्रतिमा है।

यहाँ सिद्धाचल तीर्थ का एक पट भी बना हुआ है जिसमें हनुमान हेड़े के समीप गुरुदेव हेड़ा में श्री जिनदत्तसूरिजी एवं श्री जिनकुशलसूरिजी के बिम्बों की स्थापना की गई है।

फैजाबाद--

यहाँ नगर के मध्य पालखीखान मोहल्ले में श्री शान्ति-

नाथ भगवान का मन्दिर है, जिसमें श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण प्रतिष्ठित हैं।

(श्री जिनकुशलसूरिजी के चरणों के लेख)

१ सं० १८७६ फाल्गुन शुक्ल ४ वार शनि अयोध्या नगरे बँगलावसति वास्तव्य ओसवंशे नखत्र गोत्रीय जोरामल तत्पुत्र वखतावरसिंघ तत्पुत्र कनईयालालादि सहितेन श्री जिनकुशलसूरिपादुका कारितं। प्रतिष्ठितं बृहद्भट्टारक खरतरगच्छीय श्री जिनचन्द्रसूरिभिः। कारक पूजकानां भूयसी वृद्धितरा भूयात् ॥

२ सं० १८७६ मि. फाल्गुन शु. ४ पादौ प्र०। श्री जिनचन्द्रसूरिभिः।

लखनऊ--

उत्तरप्रदेश की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध इस नगर में कई जैनमन्दिर एवं धर्मसंस्थान वने हुए हैं; जिनमें से नगर के वाहर जौहरी वाग में एक विशाल दादावाड़ी भी है। इसमें श्री जिनकुशलसूरिजी की चरणपादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं, जिनका लेख इस प्रकार है :—

(श्री जिनकुशलसूरिजी के चरणों का लेख)

सं. १९१३ शालीवाहन शके १७७८ प्रवर्तमाने तिथौ माघ शुक्ल पञ्चम्यां ॥५॥ शुक्रवासरे। जं.। यु.। प्र.। भट्टारक श्री जिनकुशलसूरिपादुका लक्ष्मणपुरवास्तव्य समस्त श्रीसंघेन कारितं प्रतिष्ठितं च वृहद्भट्टारक खरतर गच्छीय श्री जिननन्दीवर्धन सूरिपट्टालंकृत श्री जिनजयशेखरसूरिभिः। श्रेयोऽस्तु ॥

इसी प्रकार लाला हीरालालजी चुन्नीलालजी के द्वारा वनवाये गये देरासर में भी श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण हैं। उनका लेख यह है :—

(श्री जिनकुशलसूरिजी के चरणों का लेख)

सं. १६१४ श्रीजिनकुशलसूरिपादौ च।
श्री जिनमहेन्द्रसूरिभिः। का श्री गो। कन्हैयालालेन मुद्रार्थः।

इसके अतिरिक्त यहाँ के प्रायः सभी मन्दिरों में दादाजी के चरण हैं।

वाराणसी--

भारत के पुरातन ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थानों में वाराणसी का अपना विशिष्ट स्थान है। इसका दूसरा नाम काशी भी है एवं स्वतन्त्रता से पूर्व बनारस नाम भी रहा है। वस्तुतः वरणा एवं असी नाम की दो नदियों के संगम के स्मारकरूप में ही 'वाराणसी' नामकरण हुआ है। यह नगरी इतनी प्राचीन है कि भारत के प्रायः समस्त धर्मग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। पुरातन काल से ही यहाँ जैन, बौद्ध एवं वैदिक संस्कृति का सुन्दर सम्मिलन होता रहा है, इसी कारण से भारत की समस्त विद्याओं के प्रधान केन्द्र के रूप में वाराणसी की गणना की जाती है।

जैन अनुश्रुतियों के आधार पर अतिपुरातन काल में यहाँ श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का जन्म हुआ था। तभी से जैनमताव-लम्बियों के लिये वाराणसी का महत्व बढ़ने लगा। कई शताब्दियों तक इस प्रकार यहाँ जैन संस्कृति फली-फूली एवं उसका प्रचार-प्रसार होता रहा।

यद्यपि पुरातनकालीन घटनाओं के कोई विशेष अवशेष यहाँ उपलब्ध नहीं होते तथापि यहाँ के चार कल्याणकों के एक-मात्र स्मारक के रूप में स्थित चारों तीर्थों में दादाजी के चरण

एवं बड़े मन्दिर में प्रतिमा विराजमान है, जिनकी प्रतिष्ठा श्रीजिन-कुशलसूरिजी के द्वारा की गई है। यह स्थान नगर के सुप्रसिद्ध चौक बाजार से कुछ ही दूरी पर भेलुपुर में है। यहीं श्री पार्श्वनाथ-मन्दिर के साथ ही दादावाड़ी बनी हुई है।

शौरीपुर--

शिकोहाबाद के समीप यमुना नदी के दक्षिण तट पर बसे हुए बटेश्वर ग्राम के पहाड़ी मार्ग पर ध्वंसावशेष के रूप में उपलब्ध यह नगर प्राचीन काल में सोरियपुर, सूर्यपुर, एवं सौरीपुर के नाम से भी प्रसिद्ध रहा है। व्याकरण शास्त्र में यहाँ के निवासियों की भाषा 'शौरसेनी' मानी गई है।

यहाँ दादाजी श्रीजिनदत्तसूरिजी की प्रतिमा विराजमान है।

सिंहपुरी--

वाराणसी के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध स्थान सारनाथ के समीप ही यह तीर्थधाम है। यहाँ दादाजी के चरण विराजमान हैं।

हस्तिनापुर--

यद्यपि यह नगर इस समय उस सम्पन्न स्थिति में नहीं है जैसा प्राचीनकाल में था, तथापि इसका इतिहास पुरातत्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना गया है।

जैनग्रन्थों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के २१ वें पुत्र हस्तिकुमार के नाम से यह नगर बसाया गया है। भगवान ऋषभदेव को अक्षयतृतीया के दिन श्रीश्रेयांसकुमार ने यहीं वर्षीतप का पारणा कराया था। इस दृष्टि से भी इस स्थान का अधिक महत्त्व है।